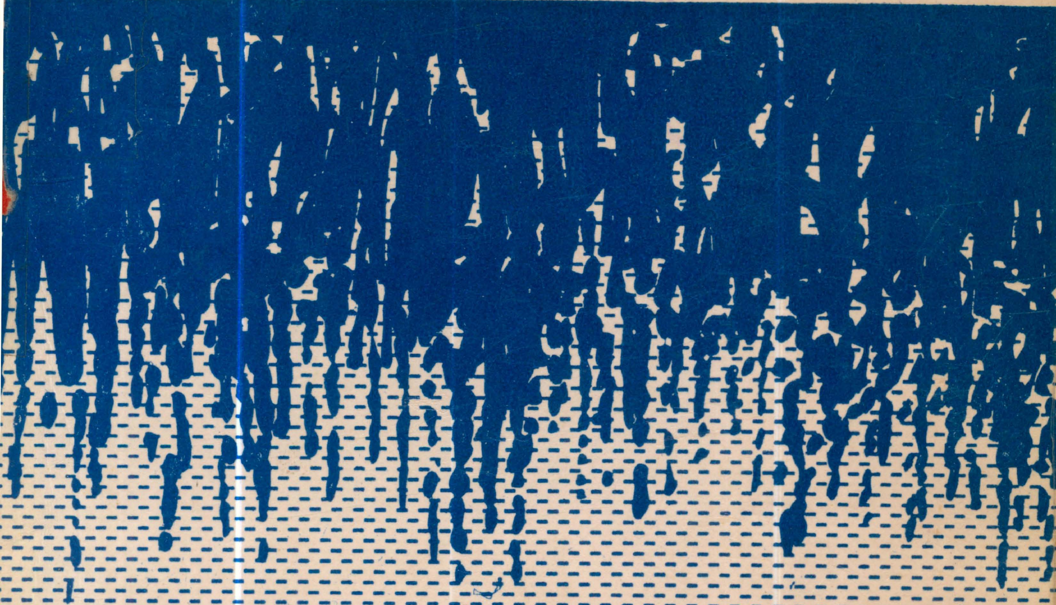

क्रान्ति के अग्रदूत

उपाध्याय ऐलाचार्य श्री १०८ कनक नंदी

क्रान्ति के अग्रदूत

उपाध्याय ऐलाचार्य श्री १०८ कनक नंदी

○ **द्रव्यदाता :**
श्रीमती वीना जैन, धर्मपत्नी प्रभात कुमार जैन,
48–कुंज गली, **मुजफ्फरनगर**,
(उ० प्र०)।

○ **पुस्तक प्राप्ति स्थान :**
(1) प्रभात कुमार जैन,
48–कुंज गली, अबुपुरा, **मुजफ्फरनगर**
251002
(2) धर्मदर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन,
निकट दि० जैन अतिथि भवन, बडौत
(मेरठ)।

○ **सर्वाधिकार सुरक्षित**

○ **मूल्य :** पठन व चिंतवन

○ **मुद्रक :**
प्रैसीडेण्ट प्रेस
मेरठ कैन्ट।
दूरभाष : 76708, 73143

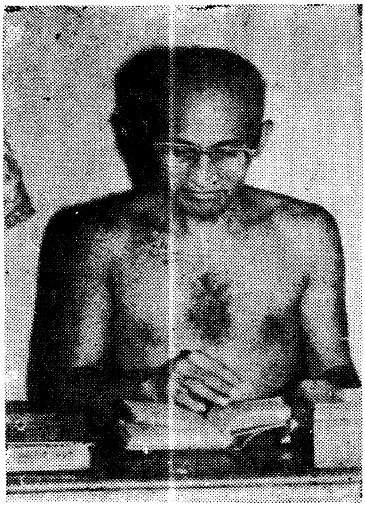

आशीर्वाद

अनादि काल से धर्म की प्रवृत्ति चलाने के लिये, प्रत्येक चतुर्थ काल में 24 तीर्थङ्कर होते हैं। इसी प्रकार वर्तमान काल में आदिनाथ से महावीर पर्यन्त 24 तीर्थङ्कर हुए हैं। उन्हीं का संक्षिप्त जीवन-परिचय इस पुस्तक में दिया है, पुस्तक का नाम है "क्रांति के अग्रदूत"। इस पुस्तक को भी एलाचार्य उपाध्याय मुनि कनकनंदी जी ने लिखा है। साधारण जीवों के लिये ये पुस्तक अच्छी जानकारी कराने वाली है। अवश्य ही पठनीय है, उपयोगी है। बड़े-बड़े पुराण पढ़ने पर जो जानकारी मिलेगी, वह जानकारी इस छोटी सी पुस्तक में उपलब्ध होगी। तीर्थङ्करों के जीवन पढ़ने से पुण्यानुबंधी पुण्य बंध होता है, मन में निर्मलता आती है, वैराग्य बढ़ता है, कर्म क्षय होता है, ये हमारे महापुरुष हीयमान से कैसे वर्द्धमान बने इसकी पूरी जानकारी मिलती है। सब लोग पुस्तक अवश्य पढ़ें। लेखक को मेरा आशीर्वाद। पुस्तक छपाने के लिये द्रव्यदाता श्राविका वीना जैन को भी मेरा आशीर्वाद, परिश्रम करने वालों को भी आशीर्वाद।

दिनांक : 4–9–1990
अनन्त चतुर्दशी
मुजफ्फरनगर।

ग० आ० कुन्थुसागर

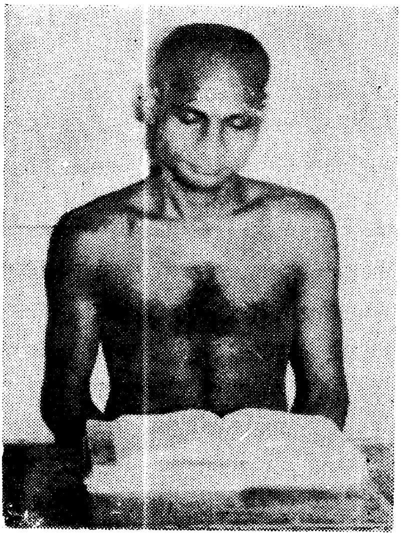

मंगलमय आशीर्वाद

इस "क्रान्ति के अग्रदूत" नामक पुस्तक का प्रकाशन भार गुरूभक्त सौभाग्यवती वीना जैन (B. A.) धर्मपत्नी प्रभात कुमार जैन लेक्चरार एस० डी० इ० कालेज ने स्वेच्छा से वहन किया है। यह एक अनुकरणीय प्रयास है वे अपनी चंचल लक्ष्मी का सदुपयोग इसी प्रकार उत्तम-उत्तम कार्यों में करें यह मेरा मंगलमय आशीर्वाद है।

इस किताब के लेखन कार्य में मुनि श्री पदमनन्दी जी, मुनि श्री कुमार विद्यानन्दी जी, आर्यिका राजश्री माताजी, आर्यिका क्षमा श्री माताजी तथा आरा की प्रियंका जैन Inter, भावना जैन B. A., अंजु जैन B. A., संगीता जैन B. A., रश्मि जैन B. A., रीतू जैन I. A., रत्ना जैन B. A., कमल कुमार जैन B. Com., सुभद्रा जैन M. A., सुलभ जैन B. A., सुगम जैन, B. A., (Hons), सुयश जैन Inter आदि लड़कियों ने सहायता की है उसी प्रकार मुजफ्फरनगर की पूनम जैन B. A., प्रियंका जैन B. A., सारिका जैन B. A., ममता जैन B. A., उमंग जैन B. A., अंजलि जैन B. A., नमिता जैन Inter, सोनिया जैन, मोनिका जैन आदि ने सहायता की है। दीपक कुमार जैन (शाहपुर), अभिनन्दन कुमार जैन (वैद्य), श्री जिवेन्द्र कुमार जैन (शाहपुर) आदि ने सहायता की है। उपरोक्त सम्पूर्ण कार्यकर्त्ताओं को मेरा शुभाशीर्वाद है। इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रकाशचन्द्र (प्रकाश पब्लिकेशन), मुजफ्फरनगर ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाही है, उनको मेरा मंगलमय आशीर्वाद है। प्रैसीडेन्ट प्रैस, मेरठ के योगेश चन्द जैन ने इसे त्रुटिरहित छपवाकर जैन साहित्य प्रकाशन में एक आदर्श प्रस्तुत किया है। वे ऐसे धार्मिक साहित्य प्रकाशन में उत्तरोत्तर उन्नति करें, ऐसा मेरा शुभाशीर्वाद है।

सम्पादन कार्य करने वाले डॉ० श्रीमती सूरजमुखी जैन (एम० ए० हिन्दी, संस्कृत, पी० एच० डी०, भूतपूर्व प्राचार्य), रघुवीर सिंह जैन (M. Sc., L. L. B.) प्रभात कुमार जैन (एम० एस० सी० रसायन प्रवक्ता) सुशील कुमार जैन (एडवोकेट) आदि को मेरा शुभाशीर्वाद है कि वे लोग अपनी शक्ति का सदुपयोग धार्मिक रचनात्मक कार्य में लगायें। सम्पूर्ण जीव जगत शान्तिमय क्रान्ति के पथिक बने इस शुभेच्छा के साथ—

—उपाध्याय कनक नन्दी

सम्पादकीय

प्रत्येक जीव स्वाभाविक रूप से शान्ति चाहता है एवं दुःख से घबराता है। शाश्वतिक सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिये अहिंसा परक, सत्यमूलक शान्ति/उन्नति की आवश्यकता है। बिना क्रान्ति, शान्ति की उपलब्धि नहीं हो सकती। आधुनिक समय में भी फ्रांस, रूस आदि देशों में क्रान्ति सफल होने के उपरान्त ही सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक क्रान्ति/उन्नति हुई। इस क्रान्ति के लिये भी शक्ति की आवश्यकता होती है। कहा भी है—"जो कम्मे सूरा-सो धम्मे सूरा" अर्थात् जो क्रम में शूरवीर समर्थ होता है, वह ही धर्म में अपनी सफल भूमिका पूर्ण कर सकता है। भले रचनात्मक कार्य हो या विध्वंसात्मक कार्य हो—दोनों के लिये शक्ति की आवश्यकता होती है। शक्ति का दुरुपयोग ही विध्वंस को आमन्त्रित करता है तथा सदुपयोग ही निर्माण, क्रान्ति में समर्थ है। व्यक्ति, समिष्टि राष्ट्र में जो भौतिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक क्रान्तियाँ हुई हैं, उन क्रान्तियों के लिये कुछ विशिष्ट महा-पुरुषों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। सम्पूर्ण क्रान्तियों में सुसंस्कार सम्पन्न महापुरुष की आवश्यकता अपरिहार्य है। उपर्युक्त समस्त क्रान्ति के अग्रदूत/नेता/कर्णधार/प्रचारक/प्रसारक/सत्य-अहिंसा के अवतार कोई युग-दृष्टा, युग-निर्माता, जगदोद्धारक, महाज्ञानी, महापुरुष होते हैं—वे हैं—**तीर्थंकर**।

तीर्थंकर कोई एक दिन में नहीं हो जाते। इस गरिमामय भूमिका को प्राप्त करने के लिये जन्म-जन्म के त्याग, तपस्या, सेवा, प्रेम, मैत्री, अहिंसा, जितेन्द्रियता, समता-ममता के सुदृढ़ संस्कार की आवश्यकता होती है। इसलिये तो एक कल्प-काल (20 कोटा-कोटी सागर का 20×10^{14} सागर वर्ष) में केवल कर्मभूमि सम्बन्धी भरत या ऐरावत् क्षेत्र में केवल 48 तीर्थंकर होते हैं जबकि मोक्षगामी अरिहन्त जीव करोड़ों-अरबों हो जाते हैं।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जिस समय पृथ्वी के पृष्ठ पर मानव समाज भौतिक भोगों व हिंसात्मक कार्यों में लिप्त होकर पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं, तब एक महापुरुष की आवश्यकता होती है जो भटके हुए मानवों को सद्मार्ग पर लाता है। इस ही महान उदात्त, विश्वोद्धार कार्य के लिये तीर्थंकरों का उदय होता है। जब ऐसे महापुरुष माता के उदर में आते हैं, उसके पहिले से ही विश्व में उसकी सूचना प्रगट होने लगती है। जैसे, रत्नवृष्टि, देवताओं का आगमन आदि।

जब तीर्थंकर गर्भ में आते हैं व फिर जन्म लेते हैं तब उसके विशेष परिणाम, प्रकृति के ऊपर पड़ते हैं। उस समय षड् ऋतुओं के फल-फूल एक साथ आना, सुभिक्ष

होना, निरोगता आना, देश की सम्पत्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि होना आदि शुभ परिणाम दिखायी देने लगते हैं। इसका कारण यह है कि प्रकृति की प्रत्येक ईकाई परस्पर प्रभावित होती है जैसे, सूर्योदय होने पर अंधकार का विलय होना, सभी प्राणियों का जागना व ऊर्जा लेना, पेड़-पौधों द्वारा प्रकाश-संश्लेषण से भोजन तैयार करना आदि। जैसे चन्द्र से प्रभावित होकर ज्वार-भाटा आते हैं, वैज्ञानिक शोध से सिद्ध हुआ है कि सूर्य विस्फोट से, सूर्य-कलंक (Sun spot) से पृथ्वी का चुम्बकीय बल प्रभावित होकर प्रकृति भी प्रभावित होती है जैसे—भूकम्प आना, सुभिक्ष या दुर्भिक्ष होना, अति वृष्टि या अनावृष्टि होना, रोगों का फैलना या समाप्त होना आदि-आदि। यदि सामान्य भौतिक वस्तुओं के परिवर्तन से प्रकृति प्रभावित हो जाती है तब तो विश्व के अद्वितीय, अलौकिक, पुण्यश्लोक, महापुरुष होते हैं उनसे क्या प्रकृति प्रभावित नहीं होगी, निश्चय ही होती है।

वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि शुद्ध व सात्विक संगीत से, मन्त्रों से, मनोभावों से प्रेरित होकर वनस्पति अधिक फल-फूल देती है, गाय-भैंस अधिक दूध देती हैं, इसी से सिद्ध होता है कि तीर्थंकर के आगमन से मनोभावों में, प्रकृति में एक अभूतपूर्व शुद्धता आती है जिससे उपर्युक्त शुभ घटनायें घटित होती हैं।

कुछ तीर्थङ्कर पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था के लिये तथा सुसन्तान के लिये विवाह करते हैं एवम् राष्ट्र की व्यवस्था के लिये राज्य-शासन करते हैं। राज्य-शासन के अनन्तर स्व-कल्याण व जगत् उद्धार के लिये वे सर्व सन्यास व्रत स्वीकार करके कठोर आत्म-साधना में लीन हो जाते हैं और कुछ तीर्थङ्कर आजीवन ब्रह्मचर्य स्वीकार करके कुमार-अवस्था में ही दीक्षा धारण कर लेते हैं।

कठोर आत्म-साधना से जब वे ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय, मोहनीय एवं अन्तराय रूपी घातिकर्मों को नष्ट करके अनन्त चतुष्टय (अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख व अनन्त वीर्य) को प्राप्त कर लेते हैं। इस अवस्था में पूर्ण आध्यात्मिक शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं। उनका शरीर सप्त धातु से रहित, शुद्ध स्फटिक मणि के समान पारदर्शी हो जाता है। विशेष पाप कर्म के अभाव से उनका शरीर इतना हल्का हो जाता है कि वे 5000 धनुष (20,000 हाथ) भूपृष्ठ से अधर स्वयमेव उठ जाते हैं। पाप परमाणु, भारी व अपारदर्शी हैं, जिनके अभाव से ही शरीर हल्का व पारदर्शी होता है। जहाँ भगवान् विराजमान होते हैं, वहाँ पर देवताओं के राजा इन्द्र की आज्ञा से, देवताओं के धनपति कुबेर विभिन्न रत्नों से एक वैचित्र्य-कलापूर्ण विशाल धर्म सभा की रचना करता है जिसे 'समोशरण' कहते हैं। उस समोशरण में केवल मनुष्य नहीं, अपितु देवताओं के साथ-साथ जन्म वैरी पशु-पक्षी भी एक साथ मैत्री-भाव से बैठकर दिव्य ध्वनि से उपदेश सुनते हैं। वह दिव्य ध्वनि एक प्रकार की होते हुए भी, वे भावनात्मक, ज्ञानात्मक व पौद्गलिक तरंगों से मिश्रित होती हैं जिन्हें समोशरण में उपस्थित प्रत्येक प्राणी अपने मस्तिष्क में अपनी ही भाषा में अपने-

अपने भावों या प्रश्नों के अनुसार ग्रहण कर लेते हैं। इन किरणों की तुलना लगभग मस्तिष्क द्वारा होने वाले दूर-सम्प्रेषण (telepathy) से की जा सकती है।

तीर्थङ्कर भगवान् अपनी दिव्य ध्वनि के माध्यम से सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, साम्य, मैत्री, समता, अनेकान्त का उपदेश करते हैं। उस समोशरण में जन्मजात बैरी प्राणि, भगवान् की पुण्य-प्रकृति एवं पवित्र वातावरण के कारण वैरत्व को भूलकर एक साथ कैसे बैठते हैं? आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार शुभ, पवित्र, अहिंसात्मक भावनाओं से भावित पुरुषों से एल्फा किरणें निकलती हैं जिससे उनमें दुष्ट प्रकृति उत्पन्न नहीं हो पाती। ऐसे जगत् उद्धारक महान् पुरुष अन्त में समस्त कलंक, शरीर व कर्म से रहित होकर एक समय विश्व के शिखर पर विराजमान् हो जाते हैं, उन्हें ही शुद्ध, बुद्ध, तीर्थङ्कर, अविकारी कहते हैं।

इस पुस्तक '**क्रान्ति के अग्रदूत**' में इसके रचयिता **उपाध्याय श्री कनक नन्दी जी** ने तीर्थङ्करों की इन्हीं विशेषताओं को अपनी रोचक, सरल शैली में विभिन्न उद्धरणों द्वारा समझाने व सिद्ध करने का प्रयास किया है। आशा है हम सभी इसके अध्ययन, मनन से कुछ लाभ उठाने का प्रयत्न करेंगे व धीरे-धीरे उसी उत्तम पद की प्राप्ति की ओर अग्रसर होंगे।

—प्रभात कुमार जैन
48–कुञ्ज गली,
मुजफ्फरनगर (उ० प्र०)
251002

दिनांक : 4 सितम्बर, 1990
अनन्त चतुर्दशी

प्राक्कथन

विश्व के प्रत्येक जीव स्वभावत:, अनंत अक्षय ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य सम्पन्न प्रभु-विभु होने के कारण, कर्म-परतन्त्र में रहने वाले संसारी-दु:ख आक्रान्त जीव भी सुखी, प्रभु-विभु होने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। परन्तु यथार्थ मार्ग प्रदर्शन-कारी के अभाव से दु:ख आक्रान्त जीव; यथार्थ उत्क्रान्ति-शान्ति के मार्ग को जाने-माने बिना एवं उस मार्ग में चले बिना उसका प्रयत्न असम्यक्-विपरीत होता है। विपरीत मार्ग में सतत प्रयत्नशील होकर गति करने पर भी वह सुखेच्छु-मुमुक्षु जीव स्व-चिर पोषित लक्ष्य बिन्दु को प्राप्त नहीं कर पाता है। अपितु वह लक्ष्य बिन्दु से अधिक से अधिक दूर से अतिदूर होता जाता है। परन्तु जब उसको यथार्थ सुख-शान्ति, क्रान्ति के पथिक का सुयोग्य मार्ग प्रदर्शन मिलता है, जिसने स्वयं अपना लक्ष्य बिन्दु प्राप्त कर लिया है, तब उसको दिशा बोध होता है, एवं यथा शक्ति विपरीत मार्ग का त्याग कर सत्य, सुख, शान्ति, क्रान्ति के मार्ग में प्रयाण करता है। अतएव योग्य क्रान्ति के लिए क्रान्तिकारी महा मानव की आवश्यकता प्रथम, प्रधान, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ एवं सर्वोपरि है। जैन दर्शनानुसार अनादिकालीन मिथ्यादृष्टि जब तक सच्चे गुरु का उपदेश प्राप्त नहीं कर पाता है, तब तक वह सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता। क्योंकि अनादि काल से कर्म परतन्त्रता के कारण संसारी जीव ने सत्य-स्वरूप से विमुख होकर असत्य, अधर्म दु:ख में ही रचापचा एवं उसका अनुभव किया हैं। इसलिये उसको सत्य का परिज्ञान एवं सत्य प्राप्ति के लिए सत्य मार्ग का परि-ज्ञान गुरु से ही होता है। वे गुरु असाधारण, अलौकिक-प्रतिभा, ज्ञान, वैराग्य-शक्ति से सम्पन्न होते हैं। अखिल जीव के हितकारी शान्तिमय-क्रान्ति के अग्रदूत जगत्गुरु के व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए पूर्वाचार्यों ने निम्न प्रकार कहा है—

मोक्ष मार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्म भूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्वानां वन्दे तद्गुण लब्धये ॥

जो मोक्ष मार्ग के नेता हैं, कर्म रूपी पर्वत को भेदन करने वाले हैं, अखिल विश्व के सम्पूर्ण तत्व का परिज्ञान करने वाले हैं, उनके गुणों की प्राप्ति के लिए उनकी वन्दना करता हूँ।

उपरोक्त वर्णन से यह सिद्ध होता है कि स्वातन्त्र्य मार्ग के नेता बनने के लिए सम्पर्ण बन्धनों से रहित होना चाहिए और सम्पूर्ण विश्व के रहस्य का परिज्ञान करना चाहिए। महान् दार्शनिक, मनीषी समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है—

आप्तेनोच्छिन्न दोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥

रत्नकरण्ड श्रा०

In the nature of things the true God should be free from the faults and weaknesses of the lower nature; (he should be) the knower of all things and the revealer of Dharma; in no other woy Can divinity be Constituted.

सच्चे सुख-शान्ति, क्रान्ति के उपदेशक (आप्त-नेता) को सम्पूर्ण अन्तरंग-बहिरंग दोषों से पूर्ण रूप से रहित होना चाहिए। जगत् गुरु (आप्त) को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी के साथ-साथ सर्व जीव हितकारी हितोपदेशी होना चाहिए। उपर्युक्त गुण सहित आप्त होते हैं। अन्यथा आप्त होने के लिए कोई भी योग्य नहीं हो सकता है।

उपरोक्त गुणालंकृत महामानव ही स्व-पर-उपकार कर सकता है। वे महान् कारूणिक, सर्व जीव हितकारी, शान्तिमय-क्रान्ति के अग्रदूत दुःख संतप्त जीवों को अपनी क्रान्तिमय वाणी से सम्बोधन करके जाग्रत करते हैं। इसी प्रकार अद्वितीय क्रान्तिकारी महापुरुष व अद्वितीय क्रान्तिकारी मत का संक्षिप्त सारगर्भित परिचय देते हुए तार्किक शिरोमणि समन्तभद्र स्वामी ने युक्त्यानुशासन में निम्न प्रकार कहा है—

दया-दम-त्याग-समाधि-निष्ठं
नय-प्रमाण-प्रकृताऽऽञ्ज सार्थम् ।
अधृष्यमन्यैरखिलैः प्रवादै-
र्जिन ! त्वदीयं मतमद्वितीयम् ॥6॥

हे वीर जिन ! आपका मत-अनेकान्तात्मक शासन-दया (अहिंसा), दम (संयम), त्याग (परिग्रह-त्यजन) और समाधि (प्रशस्तध्यान) की निष्ठातत्परता को लिए हुए है—पूर्णतः अथवा देशतः प्राणी हिंसा से निवृति तथा परोपकार में प्रवृति रूप वह दयाव्रत जिसमें असत्यादि से विरक्ति रूप सत्यव्रतादि का अन्तर्भाव (समावेश) है। मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रिय-विषयों में राग-द्वेष की निवृति रूप संयय; बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहों का स्वेच्छा से त्यजन अथवा दान और धर्म तथा शुक्ल ध्यान का अनुष्ठान; ये चारों उसके प्रधान लक्ष्य हैं। नयों तथा प्रमाणों के द्वारा सम्यक् वस्तु तत्व को बिल्कुल स्पष्ट करने वाला है और दूसरे सभी प्रवादों से अबाध्य है। दर्शन मोहोदय के वशीभूत हुए सर्वथा एकान्तवादियों के द्वारा प्रकल्पितबादों में से कोई भी वाद उसके विषय को वाधित अथवा दूषित करने के लिए समर्थ नहीं हैं 'यही सब उसकी विशेषता है और इसीलिए वह' अद्वितीय है—अकेला ही सर्वाधिनायक होने की क्षमता रखता है।

जगत् गुरु, सर्व जीव उपकारी क्रान्ति के अग्रदूत निर्दोष भगवान् जिनेन्द्र का धर्मतीर्थ, सर्वजीव हितकारी, सर्वजीव सुखकारी, उभय लोक मंगलमय, सर्व अभ्युदय के कारण होने से इनके तीर्थ को समन्त भद्र स्वामी ने सर्वोदय तीर्थ कहा है—

सर्वान्त वत्तद् गुण-मुख्य कल्पं
सर्वान्त शून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वाऽऽपदामन्तकरं निरन्तं
सर्वोदयं तीर्थमिद तवैव ॥61॥

युक्तानुशासन

हे वीर भगवान् ! आपका तीर्थ प्रवचनरूप शासन अर्थात् परमागम वाक्य जिसके द्वारा संसार' महासमुद्र को तिरा जाता है सर्वान्तवान् है—सामान्य-विशेष द्रव्य-पर्याय, विधि-निषेध एक-अनेक, आदि अशेष धर्मों को लिए हुए हैं और गौण तथा मुख्य की कल्पना को साथ में लिये हुए हैं। एक धर्म मुख्य हैं तो दूसरा धर्म गौण हैं, इसी से सुव्यवस्थित है, उसमें असंगतता अथवा विरोध के लिए कोई अवकाश नहीं है। जो शासन वाक्य धर्मों में पारस्परिक अपेक्षा का प्रतिपादन नहीं करता, उन्हें सर्वथा निरपेक्ष बतलाता है; वह सर्वधर्मों से शून्य है; उसमें किसी भी धर्म का अस्तित्व नहीं बन सकता और न उसके द्वारा पदार्थ व्यवस्था ही ठीक बैठ सकती है। अतः आपका ही यह शासन-तीर्थ सर्व दुःखों का अन्त करने वाला है, यही निंरन्त है, किसी भी मिथ्या दर्शन के द्वारा खण्डनीय नहीं है, और यही सब प्राणियों के अभ्युदय का कारण तथा आत्मा के पूर्ण अभ्युदय का साधक ऐसा सर्वोदय तीर्थ है।

सर्वोदय तीर्थ होने के लिए कुछ विशेष गुणों से युक्त होना अनिवार्य है। जो तीर्थ निर्दोष साम्यभावी, उदार, गुणग्राही सर्व जीव हितकारी, समसामयिक हो वही तीर्थ सर्वोदय हो सकता है। "सापेक्ष सिद्धान्त से युक्त सर्व विरोध से रहित स्याद्वादात्मक अनेकान्त सिद्धान्त ही सर्वोदय शासन है" ऐसा समन्त भद्र स्वामी ने उद्घोषणा किया है यथा—

अनवद्यः स्याद्वादस्तव दृष्टेष्टाऽविरोधतः स्याद्वादः ।
इतरो न स्याद्वादो सद्वितयविरोधान्मुनीश्वराऽस्याद्वादः ॥

पृष्ठ 319 श्लोक 3

हे मुनिनाथ ! 'स्यात्' शब्द पुरस्सर कथन को लिए हुए आपका जो स्याद्वाद है, अनेकान्तात्मक प्रवचन है, वह निर्दोष है, क्योंकि दृष्ट प्रत्यक्ष और इष्ट आगमादिक प्रमाणों के साथ उसका कोई विरोध नहीं है, दूसरा 'स्यात्' शब्द पूर्वक कथन से रहित जो सर्वथा एकान्तवाद है वह निर्दोष प्रवचन नहीं है; क्योंकि दृष्ट और इष्ट दोनों के विरोध को लिए हुए है, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित ही नहीं हैं, किन्तु अपने इष्ट अभिमत को भी बाधा पहुँचाता है और उसे किसी तरह भी सिद्ध करने में समर्थ नहीं हो सकता।

सर्वोदय तीर्थ सर्वकालीन सर्वदेशीय होने के कारण यह तीर्थ कालजयी है। इस तीर्थ का शासन स्वर्ग, नरक, शाश्वतिक कर्मभूमि आदि त्रिलोक में, त्रिकाल में सतत प्रवाह मान रहता है। परिवर्तनशील कर्म-भूमि में इसका प्रभाव कुछ मन्द हो जाता है तो भी सम्पूर्णरूप से नष्ट नहीं हो जाता है।

तव जिन ! शासन विभवो,
जयति कलावपि गुणाऽनुशासन विभवः।
दोषकशाऽसनविभवः स्तवन्ति,
चैनं प्रभा कृशाऽऽसन विभवः ॥

हे वीर जिन ! आपका शासन-महात्म्य-आपके प्रवचन का यथावस्थित पदार्थों के प्रतिपादन स्वरूप घोर कलिकाल में भी जय को प्राप्त है। सर्वोत्कृष्ट रूप से प्रकृत रहा है उसके प्रभाव से गुणों में अनु-शासन-प्राप्त शिष्य जनों का भव-विनष्ट हुआ है। संसार परिभ्रमण सदा के लिए छूटा है इतना ही नहीं, किन्तु जो दोषरूप चाबुकों का निराकरण करने में समर्थ है, चाबुकों की तरह पीड़ाकारी काम-क्रोधादि दोषों को अपने पास फटकने नहीं देते और अपने ज्ञानादि तेज से जिन्होंने आसन-विभुओं को लोक के प्रसिद्ध नायकों को निस्तेज किया है वे गणधर देवादि महात्मा, भी आपके इस शासन के महात्म्य की स्तुति करते हैं।

वर्तमान भौतिक वैज्ञानिक युग में भी सूर्वोदय तीर्थ की उपादेयता एवं आवश्यकता का अनुभव मानव आज कर रहा है। पूंजीपति एवं निर्धन व्यक्ति के बीच में जो गहरी एवं चौड़ी खाई दिनोंदिन बढ़ती जा रही है उसको कम एवं सम्पूर्ति करने के लिये अपरिग्रहवाद की आवश्यकता, साम्यवादी तथा सामाजवादी लोग स्पष्ट रूप से महसूस कर रहे हैं। राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपरिग्रह-वाद को व्यवहारिक रूप देने के लिये कार्लमार्क्स, लेनिन, महामा गांधी, वल्लभ भाई पटेल आदि महान् नेताओं ने अथक परिश्रम किये हैं। इसी प्रकार शांति पूर्ण सह अस्तित्व जीवन-यापन के लिये दूसरों के सत्यांश को स्वीकार करना एवं स्वयं के मिथ्या अंश का त्याग करने रूप सापेक्षवाद एवं अनेकान्त-सिद्धान्त को सर्व-जन स्वीकार कर रहे हैं। क्रूर हिंसा प्रक्रिया से मानव समाज के साथ-साथ प्रकृति को ध्वसं विध्वसं देखते हुए आज के संवेदनशील मानव अहिंसा को ही एक अद्वितीय रक्षक मानकर अहिंसा की शरण में जा रहे हैं। क्रूर हिंसा को अमानवीय कृत्य मानते हुए निरस्त्रीकरण करने की जोर-दार आवाज उठ रही है। इसी प्रकार शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शाँति के लिये एवं सुख शांति के लिये सर्वोदय की अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकान्त, सापेक्षवाद, संगठन आदि इस युग में भी सम-समायिक उपयोगी, आवश्यक अपरिहार्य सिद्धान्त हैं।

"शान्तिमय धर्म क्रान्ति के अग्रदूत का सर्वोदय तीर्थ; मंगलमय, सम-समायिक, निष्कलंक, सर्वत्र, सर्वकाल, सर्वजीव हितकारी होने के कारण सर्व शोभा सम्पन्न सर्वभद्रमय है" ऐसा समन्त भद्रस्वामी ने कहा है:—

बहुगुण-सम्पद सकलं
परमतमपि मधुर-वचन-विन्यास-कलम ।
नय-भक्त्यवतंस-कलं
तव देव ! मतं समन्तभद्रं सकलम् ॥8॥ स्वयम्भू स्तोत्र ॥

हे वीर जिनदेव ! जो परमत है–आपके अनेकान्त-शासन से भिन्न दूसरों का शासन है, वह मधुर वचनों के विन्यास से-कानों को प्रिय मालूम देने वाले वाक्यों की रचना से मनोज्ञ होता हुआ भी, प्रकट रूप में मनोहर तथा रुचिकर जान पड़ता हुआ भी, बहुगुणों की सम्पत्ति से विहल है—सत्य शासन के योग्य जो यथार्थ वादिता और पर-हित प्रतिपादनादि-रूप बहुत से गुण हैं उनकी शोभा से रहित है—सर्वथै-कान्तवाद का आश्रय लेने के कारण वे शोभन गुण उसमें नहीं पाये जाते-और इसलिये वह यथार्थ वस्तु के निरूपणादि में असमर्थ होता हुआ वास्तव में अपूर्ण, सबाध तथा जगत् के लिये अकल्याणकारी है । किंतु आपका मत-शासन-नयों के भङ्ग-स्यादस्ति-नास्त्यादि रूप अलंकारों से अलंकृत है अथवा नयों की भक्ति-उपासना रूप आभूषण को प्रदान करता है-अनेकान्तवाद् का आश्रम लेकर नयों के सापेक्ष व्यवहार की सुदंर शिक्षा देता है, और इस तरह-यथार्थ वस्तु-तत्त्व के निरूपण और परहित-प्रतिपादनादि में समर्थ होता हुआ, बहुगुण-सम्पत्ति से युक्त है—(इसी से) पूर्ण है और समन्तभद्र है—सब ओर से भद्ररूप, निर्बाधतादि विशिष्ट शोभा सम्पन्न एवं जगत् के लिये कल्याणकारी है ।

प्रत्येक द्रव्य अनेक गुण, धर्म, स्वभाव, अवस्थाओं का अखण्ड पिण्ड होने के कारण प्रत्येक द्रव्य अनेकान्त स्वरूप है । उसकी परूपणा केवल एक अपेक्षा से (नय, दृष्टिकोण, भाव) नहीं हो सकती है । इसीलिए एक ही अपेक्षा को लेकर संपूर्ण वस्तु का कथन करना आंशिक सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नहीं है । आंशिक सत्य को आंशिक सत्य मानना, सत्य होते हुये भी पूर्ण सत्य मानना मिथ्या है । जैसे-रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र हैं, लव-कुश की अपेक्षा पिता हैं, लक्ष्मण की अपेक्षा भ्राता हैं, विभीषण की अपेक्षा मित्र हैं, रावण की अपेक्षा शत्रु आदि । इस सापेक्ष कथन से रामचन्द्र पुत्र, पति आदि होते हुए भी केवल पुत्र या पति स्वरूप नहीं हैं, भले सीता की अपेक्षा पति हैं परन्तु इस सापेक्ष सत्य को सर्वत्र सत्य मानकर दशरथ, विभीषण, लक्ष्मण, रावण की भी अपेक्षा पति मानने पर मिथ्या ठहरता है । इसी प्रकार एकान्त हठाग्राही वस्तु स्वरूप के एक सत्यांश को पकड़कर अन्य सत्यांश को नकार दिया जाता है तब वहाँ वस्तु स्वरूप का विप्लव होने के कारण अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जाते हैं । इसलिए अनेकान्तात्मक सापेक्ष सिद्धान्त ही मंगल, भद्र, कल्याणकारी सिद्धान्त है ।

उपर्युक्त सर्वोदय समन्तभद्र तीर्थ के प्रवर्तक शान्तिमय क्रान्ति के अग्रदूत सर्वजयी आत्मा के लिए सुखेच्छु, मुमुक्षु, गुणग्राही, भव्यात्मा के हृदय में स्वयमेव सर्मपित होकर उन पवित्रात्मा का गुणगान करने के लिये भावरूपी तरंगें तरंगित होने लगती हैं—

नमो नमः सत्त्वहितं कराय,
वीराय भव्यांबुजभास्कराय ।
अनन्तलोकाय सुरार्चिताय,
देवाधिदेवाय नमो जिनाय । (7)

समस्त प्राणियों के हित करने वाले भव्य जीवों के हृदय कमल को सूर्य के समान प्रफुल्लित करने वाले अनन्त आकाश द्रव्य को देखने वाले देवों के द्वारा पूजित सामान्य रूप से जिनेन्द्र देव के लिए नमस्कार हो उसमें भी इस युग के विशेष देवों के भी अधिदेव आराध्य वर्धमान स्वाभी के लिये बारम्बार नमस्कार हो ।

नमो जिनायत्रिदशार्चिताय,
विनष्टदोषाय गुणार्णवाय ।
विमुक्तमार्ग प्रतिबोधनाय,
देवाधिदेवाय नमो जिनाय ।। (8) ।।

तीन दशा—बुढ़ापा, जवानी और बाल्यावस्था जिसकी समान रहती हैं अर्थात् जो सदा जवान ही बने रहते हैं, ऐसे देवताओं के द्वारा अर्चित अर्थात् पूजित जिनेन्द्र देव के लिए नमस्कार हो । जिन्होंने जन्म-जरा आदि 18 दोषों को नष्ट कर दिया है जो मुक्ति मार्ग का प्रतिबोधन करते हैं अर्थात् अन्य प्राणियों को समझाते हैं । जो देवताओं के भी देवता हैं ऐसे जिनेन्द्र देव को नमस्कार हो ।

देवाधिदेव ! परमेश्वर वीतराग,
सर्वज्ञतीर्थंकरसिद्धमहानुभाव ।
त्रैलोक्य नाथ, जिनपुंगववर्द्धमान,
स्वामिन् गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयंते ।। (9) ।।

हे देवों से पूज्य हे परम प्रभु ! हे राग, द्वेष कषाय रहित वीतराग ! हे लोकालोक प्रकाशक सर्वज्ञ देव ! हे धर्मतीर्थ के प्रवर्तक तीर्थंकर ! हे सिद्ध ! तथा हे महान् आशययुक्त ! हे तीन लोकों के स्वामी ! हे समस्त चरमशरीरी जीवों में प्रमुख जिनश्रेष्ठ ! हे महावीर स्वामिन् ! इस युग के अन्तिम तीर्थंकर ! आपके दोनों चरणों की शरण को मैं प्राप्त हुआ हूँ ।

जितमदहर्षद्वेषा, जितमोहपरीषहा, जितकषायाः ।
जित जन्ममरणरोगाः जितमात्सर्याजयन्तु जिनाः ।। (10) ।।

जिन्होंने मद हर्षभाव, द्वेष परिणति को जीत लिया है जिन्होंने मोह रूपी महाशत्रु को तथा क्षुधा, तृषादि 22 परीषहों को जीत लिया है । अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा तीनों वेद रूप 25 कषायों को जीत लिया है तथा जिन्होंने मात्सर्य, ईर्ष्या अर्थात् अदेखस के भाव को जीत लिया है ऐसे जिनेन्द्रदेव सदा जयवंत रहें ।

जयतु जिन वर्द्धमानस्त्रिभुवनहितधर्मचक्रनीरजबन्धुः ।
त्रिदशपतिमुकुटभासुर, चूड़ामणिरश्मिरंजितारूणचरणः ॥ (11) ॥

जो तीनों लोकों के हित करने वाले धर्म समूह रूपी अर्थात् भव्यजन समूह रूप कमलों के बन्धुस्वरूप अर्थात् उन्हें सुख देने वाले सूर्य के समान हैं। देवताओं के स्वामी इन्द्रों के मुकुटों में लगी हुई चूड़ामणि की किरणों से रंगे गये हैं, लालचरण जिनके, ऐसे महावीर स्वामी जयवंत रहें।

जय जय जय, त्रैलोक्यकाण्डशोभि शिखामणे,
नुद नुद नुद, स्वान्तध्वान्तं, जगत्कमलार्क नः ।
नय नय नय, स्वामिन् शांतिं, नितांतमनंतिमा,
नहि नहि नहि, त्राता लोकैकमित्र, भवत्पर ॥ (12) ॥

हे तीनों लोकों में सुशोभित होने वाले शिखामणि के समान प्रभो ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। हे जगत् रूपी कमल को विकसित करने वाले अर्क अर्थात् सूर्य हमारे हृदय के अंधकार को दूर कीजिए, दूर कीजिए, दूर कीजिए। हे प्रभो कभी नाश न होने वाली शान्ति को पूर्ण रूप से प्राप्त कराइये, शांति दीजिये, शान्ति से युक्त कीजिये। हे भव्य जीवों के अद्वितीय मित्र, आपके सिवाय और कोई रक्षा करने वाला नहीं है, नहीं है, वास्तव में नहीं है।

जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार साम्राज्य विलय हो जाता है, प्रकाश का साम्राज्य विस्तारित होता है, कमल विकसित हो जाते हैं, जीवों को वस्तु स्पष्ट प्रतिभाषित होने लगती हैं, रात्रिचर जीवों के संचार स्थगित हो जाते हैं, पशु, पक्षी, मनुष्यादि दिनचर प्राणी आनन्दोल्लास से विचरण करने लगते हैं, वैसे ज्योतिर्मय क्रान्तिकारी, महामहिम महामानव के प्रादुर्भाव से अज्ञान मिथ्यात्व, कुधर्म, अन्धपरम्परा, हिंसारूपी अन्धकार का साम्राज्य विलय हो जाता है, सत्य, धर्म, न्याय, सदाचार रूपी प्रकाशमय साम्राज्य का विस्तार होता है। भव्य जनों के हृदयरूपी कमल खिल उठते हैं, हिताहित पुण्य-पाप करणीय-अकरणीय; भक्ष-अभक्ष, गृहण-त्याग का परिज्ञान स्पष्ट रूप से परिभाषित होने लगता है। पाप रूपी रात्रि में विचरण करने वालों का प्रभाव मन्द हो जाता है एवं धर्मरूपी प्रकाशमान दिन में विचरण करने वाले आनन्द से संचार करने लगते हैं। इसीलिये क्रान्तिकारी महापुरुष सूर्य के समान स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को भी प्रकाशित करते हैं उनका जीवन ही जीवन्तशास्त्र, उनका चरित्र चलता-फिरता धर्म, उनके वचन ही अमृत हैं। महापुरुषों के बारे में एक कवि ने कहा है—

चलते चलते रहा बढ़ते बढ़ते ज्ञान ।
तपते तपते सूर्य हैं, महापुरुष महान् ॥

वे जिस मार्ग में चलते हैं वह ही मार्ग दूसरों के लिये गमन करने योग्य आदर्श पथ बन जाता है। उनके सम्पूर्ण आचार-विचार, उच्चार मूर्तिमान ज्ञान स्वरूप होते हैं और वे स्व-पर कल्याण के लिये विभिन्न बाधाओं से संघर्ष करते हुए सूर्य के समान देदीप्यमान हो जाते हैं।

नेता का अर्थ है जो स्वयं आगे-आगे गमन करके दूसरों को प्रेरणा देता है अथवा जो लक्ष्य बिन्दु प्राप्त करने के लिए स्वयं चलता है तथा दूसरों को ले जाता है उसे नेता कहते हैं। आधुनिक युग के संकीर्ण स्वार्थनिष्ठ कुछ नेताओं के समान केवल भाषण के मंच पर भाषण करके अपने कर्त्तव्य को इतिश्री मानता है, वह यथार्थ से नेता नहीं हो सकता। नेता को क्रान्तिकारी, आदर्श विचारधारा, निश्चल वचन, निष्कलंक चरित्र, कर्त्तव्यनिष्ठ, निःस्वार्थभाव, दूसरों के लिए समर्पित सेवा, अदम्य-साहस, उत्साह, बलिदान की भावनादि अनिवार्य गुणों से अलंकृत होना चाहिये। नेता को आदर्श के पथ पर स्वयं को सर्वप्रथम चलना चाहिए पश्चात् दूसरों को चलने के लिए प्रेरणा देनी चाहिए। परन्तु वर्तमान के नेता स्वयं आदर्श के पथ पर एक कदम भी आगे न बढ़कर, पीछे हटते हैं एवं दूसरों के लिए लम्बा-चौड़ा भाषण झाड़ते हैं, इसलिए आज के नेता दूसरों के लिए आदर्श, प्रेरणापद, अनुकरणीय नहीं हो पा रहे हैं।

क्रान्ति का अर्थ है विकास/उन्नति, वर्द्धमान, सर्वोदय, सुख, शान्ति की उपलब्धि है। सामाजिक आर्थिक, नैतिक, यान्त्रिक, औद्योगिक, बौद्धिक, शैक्षिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक आदि भेद से अनेक भेद हैं। परन्तु वही क्रान्ति यथार्थ से क्रान्ति है, जिससे अक्षय, अनन्त, शाश्वतिक सुखशान्ति की उपलब्धि हो। इसकी उपलब्धि आध्यात्मिक क्रान्ति से ही हो सकती है अतः आध्यात्मिक क्रान्ति ही यथार्थ से सर्वश्रेष्ठ क्रान्ति है, इसलिए शान्ति के लिए आध्यात्मिक क्रान्ति का परिज्ञान होना अनिवार्य है। आध्यात्मिक क्रान्ति के परिज्ञान के लिए आध्यात्मिक क्रान्ति के अग्रदूत का परिज्ञान होना आवश्यक है, क्योंकि क्रान्ति के जीवन्त प्रायोगिक प्रयोगशाला क्रान्तिकारी महापुरुष होते हैं। इसलिए क्रान्ति के बोलबाला युग में हमने इस पुस्तक में क्रान्ति के अग्रदूतों के व्यक्तित्व किस प्रकार के होते हैं, इसे लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है।

आध्यात्मिक क्रान्ति के अनुपूरक स्वरूप राजनैतिक, सामाजिक आदि क्रान्ति के अग्रदूतों का भी संक्षिप्त वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। इस पुस्तक का अध्ययन करके आधुनिक मानव को ज्ञात कर लेना चाहिए कि यथार्थ क्रान्ति को लाने के लिए क्रान्तिकारी युगपुरुषों, नेताओं एवं क्रान्ति के इच्छुकों को किन-किन व्यक्तित्व एवं गतिविधियों को अपनाना चाहिए; उसका एक दिशा बोध इससे प्राप्त करना चाहिए। अखिल जीव जगत् क्रान्ति के अग्रदूत (तीर्थंकर) द्वारा प्रतिपादित सर्वोदय तीर्थ का अनुकरण करते हुए अनन्त सुख को प्राप्त करें इसी शुभ कामना के साथ—

उपाध्याय कनक नन्दी

विषय अनुक्रमणिका

अध्याय विषय

1. क्रान्ति के लिये अग्रदूतों के योगदान
2. धर्म क्रान्ति के अग्रदूत
   1. तीर्थंकर के स्वरूप
   2. तीर्थंकरों के अवतरित होने के कारण
   3. तीर्थंकर बनने का उपाय
   4. मंगलमय पंच कल्याणक (गर्भ कल्याणक)
   5. रत्नवृष्टि
   6. सोलह स्वप्न
   7. स्वप्नों का फल
   8. जन्म कल्याणक
   9. तीर्थंकरों के जन्म के 10 अतिशय

      स्वेद रहितता, निर्मल शरीरता, दूध के समान धवल रुधिर, वज्रवृषभनाराच संहनन, समचतुरस्त्ररूप शरीर संस्थान, अनुपम रूप, नृप चम्पक की उत्तम गंध के समान गंध का धारण करना, 1008 उत्तम लक्षणों को धारण करना, अनन्त बल-वीर्य, हितमित एवं मधुर भाषण
   10. जन्म संदेश प्रसार का वैज्ञानिक कारण
   11. जन्माभिषेक
   12. देव विक्रिया से निर्मित अद्भुत पूर्ण ऐरावत हाथी
   13. जन्माभिषेक के लिये मेरु शिखर के लिये प्रयाण
   14. भगवान् का जन्माभिषेक
   15. अभिषेक कलशों का वर्णन
   16. अभिषेक
   17. तीर्थंकर का लाञ्छन
   18. तीर्थंकर के आभूषण निर्माण करण्ड
   19. तीर्थंकरों के गृहस्थ जीवन यापन
   20. तीर्थंकरों के छद्मस्थ काल में आहार है परन्तु नीहार नहीं

अध्याय **विषय**

21. राज्य शासन
22. तप कल्याणक (परिनिष्क्रमण कल्याणक)
23. दीक्षा विधि
24. दीक्षा पूर्व उपदेश, दीक्षा के लिये बन्धुवर्ग से अनुमति, अन्तरंग बहिरंग निर्ग्रन्थ दीक्षा, केशलोच
25. केशों का क्षीरसागर में विसर्जन
26. केवल बोध प्राप्त के लिये कठोर आध्यात्मिक साधन
27. तीर्थंकरों की आहार चर्या एवं दान तीर्थ, पंचाश्चर्य, रत्नवृष्टि, आहार दाता का महत्त्व,
28. केवल ज्ञान कल्याणक (केवल बोध लाभ), अर्हत् अवस्था में पृथ्वी से 5000 धनुष अधर में रहना
29. केवलज्ञान के अतिशय
    400 कोस भूमि में सुभिक्षता, गगन गमन, अप्राणिवध (अहिंसा), कवलाहार अभाव, उपसर्गाभाव, चतुर्मुख, सर्व विद्येश्वरता, अच्छायत्व, अपक्ष्मस्पन्दत्व (अपलक नयन), सम प्रमाण नख केशत्व
30. दिव्यध्वनि, दिव्यध्वनि का एकानेक रूप, दिव्यध्वनि सर्वभाषा स्वभावी, दिव्यध्वनि अक्षर-अनक्षरात्मक, दिव्यध्वनि की अक्षरात्मकता, दिव्यध्वनि अनक्षरात्मक, दिव्य ध्वनि देवकृत नहीं, दिव्य ध्वनि देवकृत, दिव्य ध्वनि का महत्त्व
31. देवकृत तेरह अतिशय
    सर्व ऋतुओं के फल पुष्प एक साथ होना, निष्कंटक पृथ्वी होना, परस्पर मैत्री, दर्पण तल के समान स्वच्छ पृथ्वी होना, शुभ सुगन्धित जल की वृष्टि, पृथ्वी शस्य से पूर्ण होना, सम्पूर्ण जीवों को परमानंद प्राप्त होना, सुगन्धित वायु बहना, जलाशय का जल निर्मल होना, आकाश निर्मल होना, सम्पूर्ण जीव निरोगी होना, धर्मचक्र, चरण के नीचे कमलों की रचनादि होना
32. 18 दोष रहित तीर्थंकर
    भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, भय, गर्व, रोग, द्वेष, मोह, आश्चर्य, अरति, खेद, शोक, निद्रा, चिंता, स्वेद ।
33. विश्व धर्म सभा की रचना (समवशरण) गन्धकुटी, सिंहासन, अरिहंतों की स्थिति, सिंहासन के ऊपर, समवशरण में वंदनारत जीवों की संख्या अवगाहनाशक्ति की अतिशयता, प्रवेश-निर्गमन

अध्याय	विषय
	प्रमाण, समवशरण में कौन नहीं जाते समवशरण में रोगादि का अभाव
	34. अष्टमहाप्रातिहार्य
	35. अष्ट मंगलद्रव्य
3.	1. तीर्थंकर सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विशेष वर्णन
	(i) कुबेर की किमिच्छक दान घोषण
	(ii) इच्छित वस्तु प्रदायी भूमि
	(iii) सर्वभूत हितकारी 4 महाभूत
	(iv) धन की वर्षा
	(v) कमलमयी पंक्तियाँ
	(vi) धर्म दिग्विजय प्रमाण की अद्भुत छठा
	2. विहार के समय देवों की भक्ति
	(i) मंगलमय का मंगलमय मार्ग
	(ii) मंगल विहार का मंडप
	(iii) सात-सात भव प्रदर्शक भामण्डल
	(iv) मंगलमय की मंगल यात्रा के मंगल द्रव्य
	(v) विहारावसर में नृत्य एवं स्तुति
	(vi) धर्मचक्री की धर्म विजय का धर्म चक्र
	(vii) शरणक्षता की शरण में आओ
	(viii) सर्वाश्चर्य की प्राप्ति
	(ix) हर्षमय सर्व जीव
	(x) सुखदायी प्रकृति
	(xi) जन्मजात वैरी में भी मित्रता
	(xii) सुगन्ध बयार
	(xiii) पशु से भी नमस्करणीय चतुरानन
	3. दिक्पाल द्वारा सम्मान
	(i) अद्भुत तेज पूर्ण कान्तिदण्ड
	(ii) एक वर्ष तक चिन्ह से युक्त मार्ग
	(iii) शान्ति उपचय हिंसा अपचय
	(iv) विहार भूमि में 50 वर्ष तक उपद्रव शून्य
4.	राजनैतिक क्रान्ति के अग्रदूत (चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण, रुद्र, नारद, कामदेव)

णमोकार मंत्र

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्वसाहूणं

अध्याय

1

क्रान्ति के लिए अग्रदूतों के योगदान

धर्म, सभ्यता एवम् संस्कृति का उद्गम, प्रचार-प्रसार, उन्नयन, क्रान्ति एवम् दृढ़ीकरण महापुरुषों से होता है। मनुष्य समाज एवम् पशु समाज दोनों समकालीन प्राचीन समाज होते हुए भी मनुष्य समाज उत्तरोत्तर सभ्यता एवम् संस्कृति की उन्नति करते हुए अविराम गति से आगे बढ़ता जाता है परन्तु पशु समाज प्रारम्भिक प्राचीन काल में जिस स्थिति में था आज भी सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से उसी स्थिति में है अथवा और पीछे भी हटा है। क्योंकि मनुष्य एक चिंतनशील, प्रज्ञावान, विवेकवान, प्रगतिशील समाज है। इस मानव समाज में कुछ ऐसे अलौकिक शक्ति प्रतिभा के धारी क्रान्तिकारी महान् पुरुष हुए हैं जिनसे मानव समाज को आगे बढ़ने के लिये दिशा, उत्साह, प्रेरणा मिली है। यदि मानव समाज में प्रगतिशील क्रान्तिकारी महापुरुष नहीं होते तो शायद आज भी मानव समाज पशु समाज के समकक्ष ही होता। पशु समाज में ऐसे कोई उन्नतिशील जीव नहीं होते, जिससे पशु समाज की उन्नति हो।

जिस प्रकार "न धर्मो धार्मिकै बिना" अर्थात् धर्मात्मा को छोड़कर धर्म का अस्तित्व ही नहीं है, उसी प्रकार सभ्य सांस्कृतिक मानव को छोड़कर सभ्यता एवम् संस्कृति का अस्तित्व ही नहीं है। उन्नतशील जीवन्त सभ्यता एवम् संस्कृति के विग्रह स्वरूप महामानव जो आहार-विहार, आचार-विचार करते हैं वही सभ्यता एवम् संस्कृति है। मानव समाज विशेषतः अनुकरण प्रिय होने से वे महापुरुषों का अनुकरण करके, उनके पदचिन्हों पर यथाशक्ति कदम-कदम रखकर, आगे बढ़ने का पुरुषार्थ करते हैं। प्राचीन भारतीय विचारक नीतिकारों ने कहा है—

यद्यदाचरित श्रेष्ठ स्तत्तदेवेत्तरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

जो जो आचरण, श्रेष्ठ महापुरुष करते हैं वे वे आचरण अन्य जन अनुकरण करते हैं। महापुरुष जिनको प्रमाणित करते हैं, समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत करते हैं। समाज उसको प्रमाणित मानता है। व्यास देव ने विश्व के महाकाव्य महाभारत में भी कहा है—

"महाजन गता सः पंथा।"

महामानव जिस मार्ग में अपना दृढ़ उन्नतिशील पद को धारण करके आगे बढ़ते हैं, वही मार्ग दूसरों के लिये आदरणीय, अनुकरणीय, आदर्श पथ (मार्ग) बन जाता है। अर्थात् महापुरुष रत्नद्वीप स्तम्भ के समान स्वयं को प्रकाशित करने के साथ-साथ दूसरों को भी प्रकाश प्रदान करते हैं।

प्रत्येक देश-विदेश के इतिहास पुराणों के पन्ने महापुरुषों की जीवन-गाथा से ही सजीवता प्राप्त किये हुए हैं। महापुरुषों की जीवन-गाथा यदि इतिहास पुराणों से निकाल दी जाये तो इतिहासों के पन्ने निर्जीव कोरे कागज के समान रह जायेंगे। महापुरुषों के जीवन, चलते-फिरते जीवन्त इतिहास के सदृश्य हैं। महापुरुषों से इतिहास बनता है किन्तु इतिहास से महापुरुष नहीं बनते हैं। महापुरुषों का जीवन निम्न प्रकार होता है—

चलते चलते राह है, बढ़ते बढ़ते ज्ञान।
तपते तपते सूर्य है, महापुरुष महान्॥

महापुरुषों के महा व्यक्तित्व से ही सभ्यता-संस्कृति एवं इतिहास को संजीवनी शक्ति मिलती है। प्रत्येक देश के महान् पुरुषों के पवित्र चरित्र आगामी पीढ़ी को मार्गदर्शन रूप में प्रस्तुत करने के लिये बड़े-बड़े ज्ञानी, इतिहास वेत्ता महापुरुषों ने लिपिबद्ध करके रखे जिसको इतिहास, पुराण, चरित्र, जीवन-गाथा आदि नामों से पुकारा जाता है। जैन-धर्म में एक महान् ज्ञानी ऋषि, पुराण, इतिहास के वेत्ता आचार्य जिनसेन स्वामी ने एक महान् ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की है जिसका नाम आदि पुराण या महापुराण है। आदि पुराण भारतीय इतिहास ही नहीं बल्कि विश्व इतिहास का महान् कोष है। महा प्राज्ञ आचार्य श्री ने वृषभादि धर्म तीर्थ के नायक 24 तीर्थङ्कर, राष्ट्र के अधिनायक भरतादि 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलभद्र आदि ऐतिहासिक महापुरुषों का जीवन चारित्र-चित्रण के माध्यम से इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, धर्म, राजनीति, समाजनीति आदि-आदि का सुन्दर स्पष्ट विशद् वर्णन किया है। स्वयं आचार्य श्री ने पुराण इतिहास एवम् आदि पुराण के बारे में वर्णन करते हुए निम्न प्रकार कहा है—

पुरातनं पुराणं स्यात् तन्मन्महदाश्रयात्।
महद्भिरुपदिष्टत्वात् महाश्रेयोऽनुशासनात्॥21॥ आदि पुराण प्रथम पर्व

यह ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है इसलिये पुराण कहलाता है। इसमें महापुरुषों का वर्णन किया गया है अथवा तीर्थङ्कर आदि महापुरुषों ने इसका उपदेश दिया है अथवा इसके पढ़ने से महान् कल्याण की प्राप्ति होती है इसलिये इसे महापुराण भी कहते हैं।

कविं पुराणमाश्रित्य प्रसृतत्वात् पुराणता।
महत्वं स्वमहिम्नैव तस्येत्यन्यैर्निरूच्यते॥22॥

प्राचीन कवियों के आश्रय से इसका प्रसार हुआ है। इसलिये इसकी पुराणता प्राचीनता प्रसिद्ध ही है तथा इसकी महत्ता इसके माहात्म्य से ही प्रसिद्ध है इसलिये इसे महापुराण कहते हैं। ऐसा भी कितने ही विद्वान् महापुराण की निरुक्ति अर्थ करते हैं।

महापुरुष संबन्धि महाभ्युदय शासनम् ।
महा पुराण मान्मात मत एतन्महर्षिभिः ॥23॥

यह पुराण महापुरुषों से सम्बन्ध रखने वाला हैं तथा महान् अभ्युदय-स्वर्ग मोक्षादि कल्याणों का कारण है इसलिये महर्षि लोग इसे महापुराण मानते हैं।

ऋषि प्रणीतमार्षं स्यात् सूक्तं सूनतशासनात् ।
धर्मानुशासनाच्चेदं धर्मशास्त्रमिति स्मृतम् ॥24॥

इतिहास इतीष्टं तद् इति हासीदिति श्रुतेः ।
इतिवृत्तमथैतिह्यमान्मायं चामनन्ति तत् ॥25॥

यह ग्रन्थ ऋषि प्रणीत होने के कारण आर्ष सत्यार्थ का निरूपक होने से सूक्त तथा धर्म का प्ररूपक होने के कारण धर्मशास्त्र माना जाता है। 'इति इह आसीत्' यहाँ ऐसा हुआ—ऐसी अनेक कथाओं का इसमें निरूपण होने से ऋषिगण इसे 'इतिहास', 'इतिवृत्त' और 'ऐतिह्य' भी मानते हैं।

पुराण मिति हा साख्यं यत्प्रोवाच गणाधिपः ।
तत्किलाहमधीर्वक्ष्ये केवलं भक्तिचोदितः ॥26॥

जिस इतिहास नामक महापुराण का कथन स्वयं गणधरदेव ने किया है उसे मैं मात्र भक्ति से प्रेरित होकर कहूँगा क्योंकि मैं अल्प ज्ञानी हूँ।

महापुराण संबन्धि महानायक गोचरम् ।
त्रिवर्गफल सन्दर्भं महाकाव्यं तदिष्यते ॥99॥ प्रथम पर्व आदि पुराण

जो प्राचीन काल के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाला हो, जिसमें तीर्थङ्कर चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के चरित्र का चित्रण किया गया हो तथा जो धर्म, अर्थ और काम के फल को दिखाने वाला हो उसे महाकाव्य कहते हैं।

केवल कुछ स्वार्थ पर सत्ता लोलुपी निसृंश व्यक्तियों के द्वारा मानवीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, धन-जन, जीवन को विध्वंस करने वाले युद्ध-विग्रह-कलह आक्रमण, अत्याचार, अनाचार का वर्णन यथार्थ से इतिहास नहीं है, यह तो इतिहास के लिए कलंक स्वरूप है। परन्तु महामानव की पवित्र उदात्त प्रेरणाप्रद पवित्र गाथा ही इतिहास है जिसके माध्यम से मानव को पवित्र शिक्षा एवम् दिशा बोध होता है।

जिस प्रकार ग्रीक की प्राचीन सभ्यता एवम् संस्कृति के अध्ययन के लिये वहाँ के महान् दार्शनिक नीतिवान् आदर्श 'सुकरात्', 'प्लेटो', 'अरस्तू' आदि का जीवन चरित्र अध्ययन करना चाहिये। उसी प्रकार प्राचीन भारतीय सभ्यता-संस्कृति, नीति,

नियम को जानने के लिये प्रातः स्मरणीय पुण्यश्लोका ऋषभदेवादि तीर्थङ्कर, भरतादि चक्रवर्तियों का जीवन-चरित्र अध्ययन करना आवश्यक है। जैसे, भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम के समय में 'महात्मा गाँधी' कहने से 'भारत' तथा भारत कहने से 'महात्मा गाँधी' का ग्रहण देश-विदेश के लोग करते थे उसी प्रकार प्रत्येक युग की सभ्यता-संस्कृति परिस्थिति का अध्ययन उस कालीन महापुरुषों के जीवन-चरित्र के अध्ययन से प्राप्त होता है।

हम इस प्रकरण में सर्वप्रथम उस महापुरुष का वर्णन करेंगे जिससे केवल भारतीय ही नहीं परन्तु पृथ्वी की समस्त आदि सभ्यता-संस्कृति, धर्म, कला, कौशल, ज्ञान, विज्ञान, विद्या, वाणिज्य, जीविकोपार्जनोपाय, राजनीति, समाजनीति आदि का उद्‌गम, प्रचार-प्रसार एवम् स्थापना हुई थी। इस युग के उपर्युक्त सम्पूर्ण सभ्यता आदि के सूत्रधार होने के कारण उनका नाम भी आदिनाथ, आदिब्रह्म, आदिपुरुष, युगादिपुरुष आदि तीर्थङ्कर, कुलकर, आदि धर्म प्रवर्तक आदि से अभिहित हुआ। वे थे भगवान् धर्म क्रान्तिकारी युग पुरुष ऋषभदेव।

इस प्रकरण का द्वितीय चरित्र-नायक वह महापुरुष है जो कि आदि पुरुष के ज्येष्ठ, श्रेष्ठ पुत्र थे एवम् जिनके पुण्य प्रताप पुरुषार्थ, शौर्य, वीर्य, राजनीति, प्रजापालन आदि गुणों के कारण इस देश का ही नाम 'अजनाभि' देश से भारतवर्ष रूप में विख्यात हुआ। वे हैं स्वनाम धन्य ऋषभदेव के पुत्र, पुण्यभूमि भारतवर्ष के प्रथम प्रधान एक छत्राधिपति सम्राट भरत चक्रवर्ती।

उपर्युक्त दोनों पुरुष, प्राग् ऐतिहासिक एवम् प्राग् वैदिक काल में हुए थे। क्योंकि ऋषभदेव का वर्णन वेदों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है और भरत चक्रवर्ती आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण प्रायः उनके समकालीन हैं। उपर्युक्त सिद्धान्त से स्वतः सिद्ध हो जाता है कि ऋषभदेव द्वारा इस युग के आदि में प्रतिपादित प्रचारित जैन धर्म व जैन वेदों से भी प्राचीन हैं अथवा कम से कम वेदकालीन तो हैं ही। इससे और एक सिद्धान्त स्वतः सिद्ध होता है कि इस भूखण्ड का नाम शकुन्तला एवम् दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर नहीं हुआ है क्योंकि अनेक हिन्दू पुराण एवम् जैन पुराण में ऋषभ के पुत्र भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारत हुआ, यह प्रतिपादन स्पष्ट है जोकि आगे स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है। ऋषभदेव के पुत्र भरत इस युग के प्रथम चरण में होने के कारण एवम् शकुन्तला के पुत्र भरत पश्चात् काल में होने के कारण शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारत नहीं हो सकता है।

युगादि पुरुष धर्म तीर्थ प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव, उनके ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती भरत के अनन्तर अनेक महापुरुष हुए हैं जिनके कार्य-कलाप प्रायः उपर्युक्त दोनों महापुरुषों से बहुत कुछ साम्य रखते हैं इसलिये विस्तार के भय से उनका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है। विशेष जिज्ञासु इतिहास संबंधी प्रामाणिक प्राचीन ग्रन्थ महापुराण

(आदि पुराण) हरिवंश पुराण, पद्म पुराण, पाण्डव पुराण आदि का अवलोकन करें। दोनों महापुरुष के अनन्तर अनेक करोड़ अरब वर्ष के बाद एक प्रसिद्ध धर्म क्रांतिकारी महापुरुष हुए जिनका पवित्र नाम अरिष्टनेमि (नेमिनाथ तीर्थंकर) है। वे प्रसिद्ध महापुरुष श्री कृष्ण नारायण के चचेरे भाई थे। श्री कृष्ण, कौरव पाण्डवों के सम-कालीन थे। कौरव पाण्डवों के बीच जो महाभारत रूप महायुद्ध हुआ था वह एक ऐतिहासिक घटना है जिसे वर्तमान ऐतिहासिक विद्वान् भी मान्यता देते हैं। महाभारत तथा श्री कृष्ण ऐतिहासिक प्रसिद्ध होने से उनके समकालीन चचेरे भाई अरिष्टनेमि भी ऐतिहासिक पुरुष स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। अरिष्टनेमिनाथ का वर्णन केवल जैन साहित्य में नहीं परन्तु हिन्दुओं के प्रसिद्ध वेदादि में भी पाया जाता है। ऋषभदेव के बाद 20 तीर्थंकर हुये थे। उनके 83650 वर्ष अनन्तर 23 वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ हुए हैं जो कि अत्यन्त कठिन यातना रूपी परीक्षा से उत्तीर्ण होकर केवल्य ज्ञान को प्राप्त कर बिहार के प्रसिद्ध सिद्ध क्षेत्र सम्मेद शिखर से मोक्ष पधारे। उनके नाम से तीर्थराज पर्वत का नाम पार्श्वनाथ पर्वत प्रसिद्ध हुआ है। श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर के बाद 250 वर्ष के अनन्तर सुप्रसिद्ध अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान महावीर हुए हैं। वर्धमान महावीर प्रसिद्ध महापुरुष, करुणा के अवतार महात्मा बुद्ध के समकालीन थे। दोनों महापुरुषों ने तत्कालीन, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक विषमता अन्याय, अत्याचार को दूर करने के लिये भागीरथ प्रयास किये थे। भरी यौवन अवस्था में अतुल वैभव को तृणवद् त्याग कर कठोर आत्म साधन के माध्यम से स्वयं आध्यात्मिक ज्योति को प्राप्त करके तत्कालीन समस्त अन्धकार दूर किये थे। दोनों धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा को पाप, अनैतिक अधर्म, अनाचरणीय बताकर हिंसा के विरुद्ध अहिंसा-त्मक शांति पूर्ण महान क्रान्ति उत्पन्न किये थे जिससे यज्ञ में होने वाली पशु-हिंसा यहाँ तक कि नरबलि भी निषिद्ध हो गयी। हिन्दू धर्म में याज्ञिक क्रिया कलाप में होने वाली महान हिंसा इन दोनों महापुरुषों के कारण ही अधिकांश रूप से समाप्त हुई।

हिन्दू धर्म में यज्ञ में होने वाले हिंसात्मक थोथे क्रिया कलापों से ऊबकर एवं असारता को हृदयंगम करके तथा अहिंसा के समर्थ प्रचार-प्रसार क्षत्रिय तीर्थं-करों के तथा महापुरुषों के प्रभाव में आकर हिन्दू धर्म में भी कुछ आध्यात्मिक क्रान्तिकारी महापुरुष हुए। आध्यात्मिक साधना, ध्यान, मनन, चिंतन, मनइन्द्रिय, संयमन, आकिञ्चन आदि उपायों से ही स्व-पर इहलोक-परलोक एवं आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। पूर्ण रूप से समर्थन करके, आचरण करके, प्रसार करके भोले भ्रष्ट मानव समाज को सुपथ में लाने का अकथनीय भागीरथ प्रयास किये। यह सब उपर्युक्त विषयों का विवरण उपनिषद्, भागवत पुराण आदि से स्पष्ट प्रतिभास होता है। उन क्रान्तिकारी महापुरुष में से महर्षि याज्ञवल्क्य, मैत्रेय, श्वेतकेतु, राजऋषि जनक, शुकदेव आदि का नाम अविस्मरणीय है।

उपनिषद् के लेखक प्रचार-प्रसारक एवं अनुकरण करने वाले महापुरुषों ने भी बाह्य आडम्बर क्रिया का अवलम्बन लेकर दुनिया को आध्यात्मिक ज्योति प्रदान की। उनमें अवधूत, हंस परमहंस, अलेख आदि अनेक—भेद हैं। उच्च साधक बाह्य समस्त परिग्रह के साथ-साथ वस्त्र-लंगोट मात्र का भी परित्याग कर बालकवत् पूर्ण दिगम्बर रहते थे। सुप्रसिद्ध व्यासदेव के पुत्र आध्यात्मिक प्रेमी महर्षि शुकदेव आजन्म नग्न थे।

विश्व संस्कृति में भारतीय संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि भारतीय संस्कृति में पूर्ण आध्यात्मिकता ही भारतीय संस्कृति का प्राण है। यदि भारतीय संस्कृति में से आध्यात्मिकता को निकाल दिया जाये तो वह निर्जीव हो जायेगी और आध्यात्मिक के मूर्तिमान स्वरूप भारतीय तत्व वेत्ता ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न ऋषि मुनि साधु सन्त होते हैं। अतः साधु सन्त ही भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। भारतीय संस्कृति माने साधु संस्कृति है। जब तक हम साधुओं को आदर-सम्मान की दृष्टि से नहीं देखेंगे; उनकी रक्षा, सेवा उनकी समृद्धि नहीं करेंगे तब तक हम भारतीय संस्कृति की सुरक्षा समृद्धि नहीं कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक साधु सन्त की संस्कृति होने के कारण भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिये, परिज्ञान के लिये साधुओं की पवित्र जीवन गाथा का अध्ययन अनिवार्य ही है। इस दृष्टिकोण को रखकर भारतीय सभ्यता, संस्कृति को जानने के लिए इस प्रकरण में भारतीय संस्कृति के उन्नायक, समर्थ प्रचारक एवं प्रसारक कुछ महापुरुषों के पवित्र-जीवन-चरित्र प्राचीन प्रामाणिक आचार्यकृत ग्रन्थों से कर रहे हैं। इन महापुरुषों के जीवन से उनके चरित्र, पवित्र आचरण के साथ-साथ सभ्यता-संस्कृति-धर्म नीति-नियम, सदाचार, ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा-दीक्षा, कला-कौशल आदि का परिज्ञान होता है। उनके पवित्र आदर्श चरित्र अध्ययन अन्तरङ्ग से उनके जैसे बनने की अन्तः प्रेरणा स्वतः जागृत होती है। उस प्रेरणा से प्रेरित होकर प्रगतिशील मानव उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए उनके जैसे बन जाता है। यह ही पवित्र पुरुषों की पवित्र गाथा के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है—एक मराठी कवि ने कहा है—

महापुरुष होऊन गेले त्याचे चारित्र पहा-जरा।
आपण त्यांचे समान व्हावे हा च सापड़े बोधखरा॥

अनेक महामानव इस धरती पर हो गए हैं, उनके चरित्र के अवलोकन-अध्ययन से हम भी उनके जैसे बनें इसमें ही यथार्थ सारभूत ज्ञान है अर्थात् उनका चरित्र अध्ययन करके उनके सदृश होना ही मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

केवल मनोरंजन के लिये महापुरुषों के चरित्र के अध्ययन से विशेष लाभ नहीं होता है। महापुरुष के अध्ययन से यदि हम कुछ नैतिक आध्यात्मिक उन्नति नहीं करते हैं तो हमारा अध्ययन एक मनोरंजन-कारी व्यसन रूप ही है। प्राचीन-काल में पवित्र पुरुषों के जीवन चरित्र का, विद्यापीठ, गुरुकुल, घर-घर में अध्ययन होता था। भारत के किशोर नवयुवक-नवयुवतियों, प्रौढ़ अबाल वनिता काल्प-

निक अतिरंजित विषय वासना अन्याय अत्याचार का पोषण करने वाले नोवेल, तिलस्मी आदि को पढ़कर कुपथगामी हो रहे हैं। यथार्थ से साहित्य उसे कहते हैं जिससे नैतिक सदाचार, विनय, अहिंसा सत्य-निष्ठा को पौष्टिक तत्त्व मिलें। परन्तु जिस साहित्य के माध्यम से कुशीलता, भ्रष्टाचार, उत्शृंखलता आदि की प्रेरणा मिलती है, वे सब कुशास्त्र एवं मानव समाज के लिए अहितकर, कलंक स्वरूप, विष मिश्रित भोजन के सदृश हैं। यदि प्यास लगी है तो प्यास शान्त करने वाले एवं पौष्टिक तत्त्व को देने वाले पानी का सेवन करना चाहिए। उसी प्रकार अध्ययन की प्यास है तो सुसाहित्य का आस्वादन लेना चाहिए परन्तु विष या मद्य से प्यास शान्त नहीं होती वरन् जीवन, स्वास्थ्य, नीति, धर्म नाश हो जायेगा उसी प्रकार अध्ययन की प्यास को बुझाने के लिये कुसाहित्य का सेवन नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त दृष्टिकोण को रखकर इस प्रकरण में महापुरुषों के प्रेरणाप्रद जीवन की विशिष्ट घटनाओं को प्रस्तुत कर रहे हैं।

अध्याय

2

धर्मक्रान्ति के अग्रदूत

भोग-भूमि के उपरान्त भोग-भूमि एवं कर्मभूमि के संगम समय में अर्थात् आध्यात्मिक युग के ब्राह्म मुहूर्त में विलासपूर्ण मनुष्य कुल के संस्थापक हिताकांक्षी मार्ग-प्रदर्शक चौदह मनु महापुरुष हुए। उनके उपरान्त चौदहवें मनु नाभिराज के पुत्र धर्म के भावी नायक (कर्णधार) तीर्थंकर (1) आदिनाथ हुए। उनके बाद (2) अजितनाथ (3) संभवनाथ (4) अभिनन्दननाथ (5) सुमतिनाथ (6) पद्मप्रभनाथ (7) सुपार्श्वनाथ (8) चन्द्रप्रभनाथ (9) पुष्पदन्तनाथ (10) शीतलनाथ (11) श्रेयांसनाथ (12) वासुपूज्यनाथ (13) विमलनाथ (14) अनन्तनाथ (15) धर्मनाथ (16) शांतिनाथ (17) कुन्थुनाथ (18) अरहनाथ (19) मल्लिनाथ (20) मुनिसुव्रतनाथ (21) नमिनाथ (22) नेमिनाथ (23) पार्श्वनाथ (24) वर्द्धमान अर्थात् कुल 24 तीर्थंकर हुए।

इस प्रकार इस युग के चतुर्थकाल में धर्म-तीर्थ के प्रवर्त्तक चौबीस तीर्थंकर हुए। विश्व अनादि अनन्त है। इसलिये काल भी अनादि-अनन्त गुणित है। सूक्ष्मरूप से ऋजुसूत्र नयापेक्षा, वर्तमान काल एक समय होते हुए भी स्थूल रूप से नैगम-नयापेक्षा एक समय को आगे लेकर बीस कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण एक कल्पकाल होता है। उस कल्पकाल के दो भेद हैं। (1) उत्सर्पिणी (2) अवसर्पिणी। इन दोनों काल में भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में आध्यात्मिक युग में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते हैं। वर्तमान भरत क्षेत्र सम्बन्धी अवसर्पिणी काल में उपर्युक्त चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। इसी प्रकार प्रत्येक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में भरत क्षेत्र सम्बन्धी चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते हैं। अनादि काल से अभी तक अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी व्यतीत हो गये हैं। आगे भी अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों का परिवर्तन होगा। इसलिये अनन्त काल में इस भरत क्षेत्र में अनन्त चौबीस तीर्थंकर हो गये और आगे भी अनन्त चौबीस तीर्थंकर होंगे। इसी प्रकार ऐरावत क्षेत्र में भी अनन्त चौबीस तीर्थंकर हो गये और आगे भी अनन्त चौबीस तीर्थंकर होंगे।

असंख्यात द्वीप-समुद्र सम्बन्धी मध्यलोक में—(1) जम्बूद्वीप (2) धातकी खण्डद्वीप (3) अर्द्धपुष्कर द्वीप में मनुष्य निवास करते हैं। इन अढ़ाई ($2\frac{1}{2}$) द्वीप में पाँच भरत एवं पांच ऐरावत क्षेत्र होते हैं। उपर्युक्त प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते हैं। विदेह क्षेत्र में शाश्वतिक आध्यात्मिक युग (कर्मयुग) प्रवर्त्तमान होने के कारण वहाँ पर प्रत्येक समय में अनेक तीर्थंकर सतत धर्म प्रवर्त्तन करते रहते हैं। अढ़ाई ($2\frac{1}{2}$) द्वीप में पाँच महाविदेह होते हैं। एक-एक विदेह में बत्तीस-बत्तीस भरत ऐरावत के समान विस्तृत कर्मभूमि होते हैं।

इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में पाँच महाविदेह सम्बन्धी 160+5 भरत+5 ऐरावत =170 कर्मभूमि हैं। यदि एक-एक क्षेत्र में एक-एक तीर्थंकर विद्यमान रहकर धर्म प्रवर्त्तन करते हैं तो एक-साथ एक काल में 170 तीर्थंकर अधिक से अधिक अढ़ाई द्वीप में धर्म-प्रवर्त्तन करते हैं। विदेह में कम से कम 20 तीर्थंकर विद्यमान रहते हैं। किन्तु भरत ऐरावत क्षेत्र में धर्म-तीर्थ के प्रवर्त्तक तीर्थंकर के अभाव में अल्प या दीर्घकाल तक धर्म तीर्थ का विच्छेद हो जाता है, जिस प्रकार सूर्य के अभाव में अन्धकार फैल जाता है।

तीर्थंकर के स्वरूप

तीर्थंकर एक धर्म-क्रान्तिकारी, साम्यवादी, अहिंसा-दया के अवतार समाज-सुधारक, रूढ़िवादी-मिथ्यापरम्परा, अन्धविश्वास आदि के उन्मोलक प्रज्ञा के धनी, सत्योपासक, युगदृष्टा, युग पुरुष, पुण्यश्लोका, महापुरुष होते हैं। कलिकाल सर्वज्ञ बहुभाषाविद्, महाप्राज्ञ, वीर सेनाचार्य विश्व के अद्वितीय शास्त्र (ग्रन्थराज) धवला-ग्रन्थ में तीर्थंकर के लक्षण बताते हुए निम्नोक्त प्रकार कहे हैं—

सकल भुवनैक नाथस्तीर्थ करो वर्ण्यते मुनिवरिष्ठैः
विधु धवल चामराणां तस्य स्याद्वै चतुःषष्टि ॥ 44 ॥

जिनके ऊपर चन्द्रमा के समान धवल चौंसठ-चंवर ढुरते हैं, ऐसे सकल भुवन के अद्वितीय स्वामी को श्रेष्ठ मुनि तीर्थंकर कहते हैं।

तित्थयरो चदुणाणि सुरमहिदो सिज्झि दव्वय धुवम्मि।
अणिगूहिद वल विरिओ तवोविह्याणम्मि उज्जमदि ॥ 304 ॥

'तित्थयरो' तीर्थंकरः तरंति संसारं येन भव्यास्ततीर्थ। केचन तरंति श्रुतेन गणधरै र्वलिंबन भूतैरति श्रुतं गणधरा वा तीर्थमित्युच्यते। तदुभय करणा तीर्थंकरः अथवा 'तिसु तिट्ठदितितित्थ' इति व्युतपत्तौ तीर्थशब्देन मार्गो रत्नत्रयात्मकः उच्यते तत्करणातीर्थ करो भवेति। 'चउणाणी' मतिश्रुतावधिमनः पर्यय ज्ञानवान्' 'सुरमहिदो' सुरैश्चतुः प्रकारैः पूजितः स्वर्गावतरण जन्माभिषेकपरिनिष्क्रमणेषु। सिझिदव्वमधुवम्मि नियोग भाविन्यां सिद्धावपि। तथापि 'अणिगूहिय वल विरिओ' अनुपम बल वीर्यः। 'तवोविहाणम्मि' तपः समाधानो। 'उज्जमदि' उद्योग करोति ॥ 304 ॥

जिसके द्वारा भव्य जीव संसार को तिरते हैं, वह तीर्थ है। कुछ भव्य श्रुत अथवा आलम्बनभूत गणधरों के द्वारा संसार को तिरते हैं। अतः श्रुत और गणधरों को भी तीर्थ कहते हैं। इन दोनों तीर्थों को जो करते हैं, वे तीर्थंकर 'अथवा' तिसु तिट्ठदित्ति तित्थं' इस व्युत्पत्ति के अनुसार तीर्थ शब्द से रत्नत्रयरूप मार्ग को कहा जाता है। उसके करने से तीर्थंकर होता है। वे मति, श्रुत, अवधि और मनः पर्ययज्ञान के धारी होते हैं। स्वर्ग से गर्भ में आने पर जन्माभिषेक और तपकल्याणक में चार प्रकार के देव उनकी पूजा करते हैं। उनको मोक्ष की प्राप्ति नियम से होती है फिर भी वे अपने बल और वीर्य को न छिपाकर तप के अनुष्ठान में उद्यम करते हैं ॥ 304 ॥

तीर्थंकरों के अवतरित होने के कारण

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इस न्यायानुसार मार्ग-भ्रष्ट, सत्रस्त, उन्मार्गगामी, मनुष्यों के मार्ग प्रदर्शन करने के लिये जनकल्याण, जनउद्धार, साम्यवाद की स्थापना करने के लिये क्रान्तिकारी युगदृष्टा महामानव तीर्थंकर जन्म लेते हैं। जैन रामायण, 'पद्मपपुराण' में महर्षि रविषेणाचार्य बताते हैं कि—

आचारेण विघातेन कुदृष्टिनां च संपदा।
धर्म ग्लानिं परिप्राप्तामुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः॥ 206॥

जब आचार-विचार, नैतिक आचार-शिष्टाचार आदि का अवमूल्यन (पतन) होता है, घात होता है, मिथ्या-पाखण्डी ढोंगी, दम्भी, आततायियों की श्री सम्पत्ति, विभूति, शक्ति वृद्धि होती है तब सत्य, अहिंसा, प्रेम, मैत्री, करुणा, धर्म के संस्थापक युगदृष्टा, महामानव तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं और शाश्वत सत्य, अहिंसा, धर्म का उद्धार करते हैं।

गीता में भी युग पुरुषों के अवतार के विषय में निम्न प्रकार कारिका दिया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थान मधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ 6॥
परित्राणाय साधूणां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥ 8॥

हे भारत! धनुर्धर अर्जुन! जब-जब धर्म मन्द पड़ जाता है, अधर्म का जोर बढ़ता है तब-तब मैं जन्म धारण करता हूँ। साधु, सज्जन, धर्मात्माओं की रक्षा, दुष्टों के निवारण-नाश तथा धर्म का पुनरुद्धार करने के लिये युगों-युगों में जन्म लेता हूँ।

'सच्चिदानंद स्वरूप नित्य' निरंजन, अविकारी, सिद्ध, शुद्ध, परमात्मा जन्म-जरा मरण से रहित होने के कारण जन्म ग्रहण नहीं करते हैं। परन्तु भविष्य में मोक्ष जाने वाले अर्थात् भावी शुद्ध परमात्मा स्वर्ग से अवतरित होकर धर्म प्रचार करते हैं, अधर्म का विनाश करते हैं। वे इसी अपेक्षा, भगवान का अवतार होते हैं मानना चाहिये; इसी को जैन धर्म में गर्भ-जन्म कल्याणक कहते हैं।

तीर्थंकर बनने का उपाय

तीन लोक में अद्वितीय महान धर्म-क्रान्तिकारी तीर्थंकर पद किसी की कृपा, आशीर्वाद, वर, प्रसाद से प्राप्त नहीं होता। इस पद के लिये महान पुरुषार्थ, विश्व मैत्री, विश्व-प्रेम, सर्व जीव हिताय सर्वजीव सुखाय की महान उद्धार भावना की परम आवश्यकता होती है। महान पवित्र उदात्त 16 प्रकार की भावनाओं एवं उज्जवल जीवन के द्वारा कोई विरल पुण्य श्लोका महामानव इस तीर्थंकर पद प्राप्त करने के लिये समर्थ होता है। भव्यात्मा सम्यग्दृष्टि साधक आत्म साधन के माध्यम से भगवद् पद को प्राप्त कर सकता है। परन्तु तीर्थंकर पद को प्राप्त करने के लिये विश्व के

अद्वितीय पुण्य कर्म तीर्थंकर नाम कर्म प्रकृति को संचित करना पड़ेगा। बिना तीर्थंकर पुण्य प्रकृति कोई भी तीर्थंकर नहीं बन सकता है और धर्म तीर्थ का समर्थ प्रवर्तक, प्रचारक, पोषक, संरक्षक नहीं बन सकता है। यह पुण्य कर्म इतना, अपूर्व एवं संचय करने में कष्ट साध्य है कि 10 कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण काल में भरतक्षेत्र में केवल 24 ही तीर्थंकर जन्म लेकर इस धरती को पवित्र बनाते हैं। तीर्थंकर बनने के लिये विशेषकर पूर्वभव का संस्कार, पुण्य, विश्व मैत्री, सद्भावना, सम्यग्दर्शन आदि की प्रबल प्रेरणा चाहिये। तीर्थंकर बनने के लिये पवित्र 16 कारण भावनाओं की आवश्यकता होती है।

षोडश कारण भावना—

आह, किमेतावानेव शुभनाम्न आस्रवविधिरुत कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते-यदिदं तीर्थंकर नामकर्मानन्तानुपम प्रभावमचिन्त्य विभूति विशेष कारणं त्रैलोक्यं विजयकरं तस्यास्त्रव विधि विशेषोऽस्तीति।

जो यह अनंत और अनुपम प्रभाव वाला तीर्थंकर नाम कर्म है।

दर्शन विशुद्धिर्विनय सम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग संवेगौ शक्तितस्त्याग तपसी साधुसमाधि वैय्यावृत्यकरणमर्हदाचार्य बहुश्रुत प्रवचन भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्ग प्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥ 24 ॥

तत्त्वार्थसूत्र। अध्याय 6

दर्शन विशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शील और व्रतों का अतिचार-रहित पालन करना, ज्ञान में सतत् उपयोग, सतत् संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वैयावृत्य करना, अरिहंत भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचनभक्ति आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना, मोक्ष मार्ग की प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव हैं।

(1) **दर्शन विशुद्धि—**

जिनेन भगवताऽर्हत्परमेष्ठिनोपदिष्टे निर्ग्रन्थलक्षणे मोक्षवर्त्मनि रुचि दर्शनविशुद्धिः। तस्या अष्टावङ्गानि निश्शङ्कितत्वं निःकाङ्क्षिताविचिकित्सा विरहता अमूढदृष्टितौ उपबृंहणं स्थितीकरणं वात्सल्य प्रभावना चेति।

जिन भगवान अरिहंत परमेष्टि द्वारा कहे हुए निर्ग्रन्थ स्वरूप, मोक्ष मार्ग पर रुचि रखना दर्शन विशुद्धि है। उसके 8 अंग हैं। (1) निःशंकितत्व (2) निःकांक्षिता (3) निर्विचिकित्सितत्व (4) अमूढदृष्टिता (5) उपबृंहण (6) स्थितिकरण (7) वात्सल्य (8) प्रभावना।

(2) **विनय सम्पन्नता—**

सम्यग्ज्ञानादिषु मोक्षमार्गेषु तत्साधनेषु च गुर्वादिषु स्वयोग्यवृत्या सत्कार आदरो विनयस्तेन सम्पन्नता विनयसम्पन्नता।

सम्यग्ज्ञानादि मोक्षमार्ग और उनके साधन गुरु आदि के प्रति अपने योग्य आचरण द्वारा आदर-सत्कार करना विनय है और इससे युक्त होना विनय सम्पन्नता है।

(3) शील व्रतों का अतिचार रहित पालन करना—

(अहिंसादिषु व्रतेषु तत्प्रतिपालनार्थेषु च क्रोधावर्जनादिषु शीलेषु निरवद्या वृत्तिः शीलव्रतेष्वनतीचारः)

अहिंसादिक व्रत हैं और इनके पालन करने के लिये क्रोधादिक का त्याग करना शील है। इन दोनों के पालन करने में निर्दोष प्रवृत्ति रखना शीलव्रतानतिचार है।

(4) ज्ञान में सतत उपयोग—

(जीवादि पदार्थ स्वतत्त्व विषये सम्यग्ज्ञाने नित्यं युक्तता अभिक्षणज्ञानोपयोगः)

जीवादि पदार्थ रूप स्वतत्त्व विषयक सम्यग्ज्ञान में निरन्तर लगे रहना अभिक्षणज्ञानोपयोग है।

(5) सतत संवेग—

(संसार दुःखान्नित्यभीरुता संवेगः)

संसार के दुःखों से निरन्तर डरते रहना संवेग है।

(6) शक्ति के अनुसार त्याग—

(त्यागो दानम् तत्त्रिविधम् आहारदानमभयदानं ज्ञानदान चेति। तच्छक्तितो यथाविधि प्रयुज्यमानं त्याग इत्युच्यते)

त्याग दान है। वह तीन प्रकार का है—आहार दान, अभय दान और ज्ञान दान, उसे शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक देना यथा शक्ति त्याग है।

(7) शक्ति के अनुसार तप—

(अनिगूहित वीर्यस्य मार्गाविरोधि कायक्लेशस्तपः)

शक्ति को न छिपाकर मोक्ष मार्ग के अनुकूल शरीर को क्लेश देना यथाशक्ति तप है।

(8) साधु समाधि—

(यथा भाण्डागारे दहने समुत्थिते तत्प्रशमनमनुष्ठीयते बहूपकारत्वात्तथाऽनेक व्रतशील समृद्धस्य मुनेस्तपसः कुतश्चित्प्रसूहे समुपस्थिते तत्सन्धारणं समाधिः)

जैसे भाण्डार में आग लग जाने पर भाण्ड़ार बहुत उपकारी होने से आग को शान्त किया जाता है इसी प्रकार अनेक प्रकार के व्रत और शीलों से समृद्ध मुनि के तप करते हुये किसी कारण से विघ्न के उत्पन्न होने पर उसका संधारण करना-शान्त करना साधु समाधि है।

(9) वैयावृत्य करना—

(गुणवद् दु:खोपनिपाते निरवद्येन विधिना तदपहरणं वैयावृत्यम्)

गुणी पुरुष के दुख आ पड़ने पर निर्दोष विधि से उसका दु:ख दूर करना वैयावृत्य है ।

अरिहंत आचार्य बहुश्रुत और प्रवचन भक्ति—

(अर्हदाचार्येषु बहुश्रुतेषु प्रवचने च भाव विशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्तिः ।)

(10) अरिहंत भक्ति—

अरिहंत भगवान में भावों की विशुद्धि के साथ अनुराग, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, समर्पण भाव रखना अरिहंत भक्ति है ।

(11) आचार्य भक्ति—

धर्माचार प्रति अनुराग की भावना रखना आचार्य भक्ति है ।

(12) बहुश्रुत भक्ति—

जो ज्ञान, विज्ञान के धनी हैं इसी प्रकार निर्ग्रन्थ तपोधन उपाध्यायश्री (अध्यापक) के प्रति भावों की विशुद्धि के साथ अनुराग रखना बहुश्रुत भक्ति है ।

(13) प्रवचन भक्ति—

सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी भगवान के प्रकृष्ट वचनों के प्रति भावों की विशुद्धि के साथ अनुराग रखना प्रवचन भक्ति है ।

(14) आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना—

(षण्णामवश्यक क्रियाणां यथाकालंप्रवर्तनमावश्यकापरिहाणिः)

यह आवश्यक क्रियाओं का यथा समय करना आवश्यक परिहाणि है ।

(15) मोक्ष मार्ग की प्रभावना—

(ज्ञानतपोदान जिनपूजा विधिना धर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावना)

ज्ञान, तप, दान और जिनपूजा इनके द्वारा धर्म का प्रकाश करना मार्ग प्रभावना है ।

(16) प्रवचनवात्सल्य—

(वत्से धेनुवत्स धर्मणि स्नेहः प्रवचनवत्सलत्वम् । तान्येतानि षोडशकारणानि सम्यक् भाव्यमानानि व्यस्तानिसमस्तानि च तीर्थंकर नामकर्मास्रव कारणानि प्रत्येतव्यानि)

जैसे गाय बछड़े पर स्नेह रखती है उसी प्रकार साधर्मियों पर स्नेह रखना प्रवचनवत्सलत्व है । ये सब सोलह कारण हैं । यदि अलग-अलग इनका भले प्रकार चिन्तन किया जाता है तो भी ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण होते हैं और समुदायरूप से सबका भले प्रकार चिन्तन किया जाता है तो भी ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण हैं ।

मंगलमय पञ्च कल्याणक—

ऊपर वर्णित महती 16 भावनाओं से जो महापुरुष भावित हो (जो है) वे आगे जाकर उन भावनाओं के फलस्वरूप तीनों लोक के उपकारी धर्म तीर्थ के प्रवर्तक 5 कल्याणक से मंडित तीर्थंकर होते हैं।

(1) गर्भ कल्याणक (स्वर्गावतरण) (2) जन्म कल्याणक (3) दीक्षा कल्याणक (परिनिष्क्रमण) (4) केवलज्ञान कल्याणक (बोधि लाभ) (5) मोक्ष कल्याणक।

इस प्रकार कल्याणक 5 होते हैं। जो कल्याणमय, अभ्युदय सूचक मंगलमय विशेष असाधारण महत्त्वपूर्ण घटना होती है उसको कल्याणक कहते हैं।

(1) गर्भ कल्याणक—

जिस प्रकार सूर्य उदय के बहुत ही पहले अंधकार शनैः शनैः विलय को प्राप्त हो जाता है, शनैः शनैः प्रकाश का आगमन होता है, आकाश लालिमा से रंजित होता जाता है उसी प्रकार महान् पुण्यशाली जगत उद्धारक, तीर्थंकर के अवतार के पहले ही इस भूमण्डल में अनेकानेक अलौकिक महत्त्वपूर्ण घटना घटी मानो तीर्थङ्कर के आगमन से पुलकित होकर विश्व, भूमण्डल, प्रकृति, ही भगवान का सुस्वागत कर रहे हैं।

(A) रत्न वृष्टि—

जिस प्रकार बड़े अतिथि के आगमन पर उनके श्रद्धालु आदि उनका सुस्वागत करने के लिये द्वार, नगर आदि सुसज्जित करते हैं, एवं पुष्प वृष्टि आदि करते हैं, उसी प्रकार तीन लोक के एकैक बंधु जगदुद्धारक तीर्थंकर के मंगलमय पृथ्वी पर आगमन के छः महीने के पहिले ही देवों ने रत्न वृष्टि की।

षड्भिर्मासैरथैतस्मिन् स्वर्गादवतरिष्यति।
रत्नवृष्टिं दिवो देवाः पातयामासुरादरात् ॥ 84 ॥

आदि पुराण पर्व 12

तदनन्तर 6 महीने बाद भगवान वृषभदेव यहाँ स्वर्ग से अवतार लेंगे ऐसा जानकर देवों ने बड़े आदर के साथ आकाश से रत्नों की वर्षा की।

स्क्रन्दन नियुक्तेन धनदेन निपातिता।
साभात् स्वसंपदौत्सुक्यात् प्रस्थितेवाग्ततो विभोः ॥ 85 ॥

इन्द्र के द्वारा नियुक्त हुए कुबेर ने जो रत्न की वर्षा की थी, वह ऐसी सुशोभित होती थी मानो वृषभदेव की सम्पत्ति उत्सुकता के कारण उनके आने से पहले ही आ गयी हो।

हरिन्मणि महानील पद्मरागांशु संकरैः।
साधुतत् सुरचापश्रीः प्रगुणत्व मिवाश्रिता ॥ 86 ॥

वह रत्नवृष्टि हरिन्मणि इन्द्रनील मणि और पद्मराग आदि मणियों की किरणों के समूह से ऐसी देदीप्यमान हो रही थी मानो सरलता को प्राप्त होकर (एक रेखा में सीधी होकर) इन्द्र धनुष की शोभा ही आ रही हो।

रैधारैरावत स्थूल समायत कराकृतिः।
बभौ पुण्यद्रुमस्येव पृथुः प्रारोह सन्तति ॥ 87 ॥

ऐरावत हाथी की सूँड के समान स्थूल गोल और लम्बी आकृति के धारण करने वाली वह रत्नों की धारा ऐसी शोभायमान होती थी मानो पुण्य रूपी वृक्ष के बड़े मोटे अंकुरों की संतति ही हो।

नीरन्ध्रं रोदसी रुद्ध्वा रायाँ धारा पतन्त्यभात।
सुरद्रुमै रिवोन्मुक्ता सा प्रारोह परम्परा ॥ 88 ॥

अथवा अतिशय सघन तथा आकाश पृथ्वी को रोककर पड़ती हुई वह रत्नों की धारा ऐसी सुशोभित होती थी मानो कल्पवृक्षों के द्वारा छोड़े हुए अंकुरों की परम्परा ही हो।

रेजे हिरण्मयी वृष्टिः खाङ्गणान्निपतन्त्यसौ।
ज्योतिर्गण प्रभेवोच्चै रायान्ती सुरसद्मनः ॥ 89॥

अथवा आकाश रूपी आँगन से पड़ती हुई वह सुवर्णमयी वृष्टि ऐसी शोभायमान हो रही थी मानो स्वर्ग से अथवा विमानों से ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट प्रभा ही आ रही हो।

खाद् भ्रष्टा रत्न वृष्टिः सा क्षणमुत्प्रेक्षिता जनैः।
गर्भस्रुतिर्निधीनां किं जगत्क्षोभादभूदिति ॥ 90 ॥

अथवा आकाश से बरसती हुई रत्नवृष्टि को देखकर लोग यही उत्प्रेक्षा करते थे कि क्या जगत में क्षोभ होने से निधियों का गर्भपात हो रहा है।

खाङ्गणे विप्रकीर्णानि रत्नानि क्षणमावभुः।
द्युशाखिनां फलानीव शातितानि सुरद्विपैः ॥91॥

आकाश रूपी आँगन में जहाँ-तहाँ फैले हुए वे रत्न क्षण भर के लिए ऐसे शोभायमान होते थे मानो देवों के हाथियों ने कल्पवृक्षों के फल ही तोड़-तोड़ कर डाले हों।

खाङ्गणे गणनातीता रत्नधारा रराज सा।
विप्रकीर्णेव कालेन तरला तारकावली ॥92॥

आकाश रूपी आंगन में वह असंख्यात् रत्नों की धारा ऐसी जान पड़ती थी मानो समय पाकर फैली हुई नक्षत्रों की चंचल और चमकीली पंक्ति ही हो।

विद्युदिन्द्रायुधे किंचित् जटिले सुरनायकैः।
दिवो विगलिते स्यातामित्यसौ क्षणमैक्ष्यत ॥93॥

अथवा उस रत्न वर्षा को देखकर क्षणभर के लिए यहाँ उत्प्रेक्षा होती थी कि स्वर्ग से मानो परस्पर मिले हुए बिजली और इन्द्रधनुष ही देवों ने नीचे गिरा दिये हों।

किमेषा वैद्युती दीप्तिः किमुत द्युसदां द्युतिः ।
इति व्योमचरैरैक्षि क्षणमाशङ्क्य साम्बरे ॥94॥

अथवा देव और विद्याधर उसे देखकर क्षणभर के लिए आशंका करते थे कि यह क्या आकाश में बिजली की कान्ति है अथवा देवों की प्रभा है ?

सैषा हिरण्मयी वृष्टिर्धनेशेन निपातिता ।
विभोर्हिरण्यगर्भत्वमिव बोधयितुं जगत् ॥95॥

कुबेर ने जो यह हिरण्य अर्थात् सुवर्ण की वृष्टि की थी वह ऐसी मालूम होती थी मानो जगत् को भगवान् की हिरण्यगर्भता बतलाने के लिये ही की हो। जिनके गर्भ रहते हुए हिरण्य सुवर्ण की वर्षा आदि हो वह हिरण्य गर्भ कहलाता है।

षण्मासानिति सापप्तत पुण्ये नाभिनृपालये ।
स्वर्गावतरणाद् भर्त्तुः प्राक्तरां द्युम्नसन्ततिः ॥96॥

इस प्रकार स्वामी वृषभदेव के स्वर्गावतरण से 6 महीने पहले से लेकर अतिशय पवित्र नाभिराज के घर पर रत्न और सुवर्ण की वर्षा हुई थी।

पश्चाच्च नवमासेषु वसुधारा तदा मता ।
अहो महान् प्रभावोऽस्य तीर्थकृत्त्वस्य भाविनः ॥97॥

इस प्रकार गर्भावतरण से पीछे भी नौ महीने तक रत्न तथा सुवर्ण की वर्षा होती रही थी सो ठीक ही है क्योंकि होने वाले तीर्थंकर का आश्चर्यकारक बड़ा भारी प्रभाव होता है।

रत्नगर्भाधरा जाता हर्षगर्भाः सुरोत्तमाः ।
क्षोभमगाज्जगद्गर्भो गर्भाधानोत्सवे विभोः ॥98॥

(अ० 12 पृ० 258)

भगवान् के गर्भावतरण उत्सव के समय यह समस्त पृथ्वी रत्नों से व्याप्त हो गई थी; देव हर्षित हो गए थे और समस्त लोक क्षोभ को प्राप्त हो गया था ॥98॥

सिक्ताजलकणैर्नाङ्गैः मेहां रत्नैरलंकृता ।
गर्भाधाने जगद्भर्त्तु र्गर्भिणीवाभवद्गुरुः ॥99॥

(अ० 12 पृ० 258)

भगवान् के गर्भावतरण के समय यह पृथ्वी गंगा नदी के जल के कणों से सींची गयी थी तथा अनेक प्रकार के रत्नों से अलंकृत की गयी थी इसलिए वह भी किसी गर्भिणी स्त्री के समान भारी हो गयी थी ॥99॥

रत्नैः कीर्णा प्रसूनैश्च सिक्ता गन्धाम्बुभिर्बभौ ।
तदास्नातानुलिप्तेव भूषिताङ्गी धराङ्गना ॥100॥

(अ० 12 पृ० 258)

उस समय रत्न और फूलों से व्याप्त तथा सुगन्धित जल से सींची गई यह पृथ्वी रूपी स्त्री स्नान कर चन्दन का विलेपन लगाये और आभूषणों से सुसज्जित-सी जान पड़ती थी।

सम्मता नाभिराजस्य पुष्पवत्यरजस्वला ।
वसुन्धरा तदा भेजे जिनमातुरनुक्रियाम् ॥101॥

(अ० 12 पृ० 259)

अथवा उस समय वह पृथ्वी भगवान् वृषभदेव की माता मरूदेवी की सदृशता को प्राप्त हो रही थी क्योंकि मरूदेवी जिस प्रकार नाभिराज को प्रिय थी उसी प्रकार वह पृथ्वी उन्हें प्रिय थी और मरूदेवी जिस प्रकार रजस्वला न होकर पुष्पवती थी, उसी प्रकार वह पृथ्वी भी रजस्वला (धूलि से युक्त) न होकर पुष्पवती (जिस पर फूल बिखरे हुए थे) थी ॥101॥

सोलह स्वप्न

अनन्तर किसी दिन मरूदेवी राजमहल में गंगा की लहरों के समान सफेद और रेशमी चादर से उज्ज्वल कोमल शैया पर सो रही थी । सोते समय उसने रात्री के पिछले प्रहर में जिनेन्द्र देव के जन्म को सूचित करने वाले तथा शुभ फल देने वाले नीचे लिखे हुए सोलह स्वप्न देखे ॥102–103॥

सबसे पहले उसने इन्द्र का ऐरावत हाथी देखा । वह गम्भीर गर्जना कर रहा था तथा उसके दोनों कपोल एवं सूँड इन तीन स्थानों से मद झर रहा था इसलिये वह ऐसा जान पड़ता था मानो गरजता और बरसता हुआ शरद् ऋतु का बादल ही हो ॥101॥ दूसरे स्वप्न में उसने एक बैल देखा । उस बैल के कन्धे नगाड़े के समान विस्तृत थे, वह सफेद कमल के समान कुछ-कुछ शुक्ल वर्ण था । अमृत की राशि के समान सुशोभित था और मन्द गम्भीर शब्द कर रहा था ॥105॥ तीसरे स्वप्न में उसने एक सिंह देखा । उस सिंह का शरीर चन्द्रमा के समान शुक्ल वर्ण था और कन्धे लाल रंग के थे इसलिये वह ऐसा मालूम होता था मानो चाँदनी और सन्ध्या के द्वारा ही उसका शरीर बना हो ॥106॥ चौथे स्वप्न में उसने अपनी शोभा के समान लक्ष्मी को देखा । वह लक्ष्मी कमलों के बने हुए ऊँचे आसन पर बैठी थी और देवों के हाथी सुवर्णमय कलशों से उनका अभिषेक कर रहे थे ॥107॥ पाँचवें स्वप्न में उसने बड़े ही आनन्द के साथ दो पुष्प-मालाएँ देखीं । उन मालाओं पर फूलों की सुगन्धि के कारण बड़े-बड़े भौंरे आ गये थे और वे मनोहर झंकार शब्द कर रहे थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो उन मालाओं ने गाना ही प्रारम्भ किया हो । ॥108॥

छठे स्वप्न में उसने पूर्ण चन्द्रमण्डल देखा । वह चन्द्रमण्डल ताराओं सहित था और उत्कृष्ट चाँदनी से युक्त था इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो मोतियों सहित हँसता हुआ अपना (मरूदेवी का) मुख-कमल ही हो ॥109॥ सातवें स्वप्न में उसने उदयाचल से उदित होते हुए तथा अन्धकार को नष्ट करते हुए सूर्य को देखा । वह सूर्य ऐसा मालूम होता था मानो मरूदेवी के माङ्गलिक कार्य में रखा हुआ स्वर्ण-मय कलश ही हो ॥110॥ आठवें स्वप्न में उसने स्वर्ण के दो कलश देखे । उन

कलशों के मुख कमलों से ढके हुए थे जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो हस्तकमल से आच्छादित हुए अपने दोनों स्तनकलश ही हों ॥111॥

नौवें स्वप्न में फूले हुए कुमुद और कमलों से शोभायमान तालाब में क्रीड़ा करती हुई दो मछलियाँ देखीं। वे मछलियाँ ऐसी मालूम होती थीं मानो अपने (मरूदेवी के) नेत्रों की लम्बाई ही दिखला रही हों ॥112॥ दसवें स्वप्न में उसने एक सुन्दर तालाब देखा। उस तालाब का पानी तैरते हुए कमलों की केशर से पीला-पीला हो रहा था जिससे ऐसा मालूम होता था मानो पिघले हुए स्वर्ण से ही भरा हो ॥113॥ ग्यारहवें स्वप्न में उसने क्षुभित हो बेला (तट) को उल्लंघन करता हुआ समुद्र देखा। उस समय उस समुद्र में उठती हुई लहरों से कुछ-कुछ गम्भीर शब्द हो रहा था और जल के छोटे-छोटे कण उड़कर उसके चारों ओर पड़ रहे थे जिससे ऐसा मालूम होता था मानो यह अट्टहास ही कर रहा हो ॥114॥ बारहवें स्वप्न में उसने एक ऊँचा सिंहासन देखा। वह सिंहासन स्वर्ण का बना हुआ था और उसमें अनेक प्रकार की चमकीली मणि लगी हुई थीं जिससे ऐसा मालूम होता था मानो वह मेरू पर्वत के शिखर की उत्कृष्ट शोभा ही धारण कर रहा हो ॥115॥ तेरहवें स्वप्न में उसने एक स्वर्ग का विमान देखा। वह विमान बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नों से दैदीप्यमान था और ऐसा मालूम होता था मानो देवों के द्वारा उपहार में दिया हुआ अपने पुत्र का प्रसूतिग्रह (उत्पत्ति स्थान) ही हो। ॥116॥

चौदहवें स्वप्न में उसने पृथ्वी को भेदन कर, ऊपर आया हुआ नागेन्द्र का भवन देखा। वह भवन ऐसा मालूम होता था मानो पहले दिखे हुए स्वर्ग के विमान के साथ स्पर्द्धा करने के लिए ही उद्यत हुआ हो ॥117॥ पन्द्रहवें स्वप्न में उसने अपनी उठती हुई किरणों से आकाश को पल्लवित करने वाली रत्नों की राशि को देखा। उन रत्नों की राशि को मरूदेवी ने ऐसा समझा था मानो पृथ्वी देवी ने उसे अपना खजाना ही दिखाया हो ॥118॥ और सोलहवें स्वप्न में उसने जलती हुई प्रकाशमान तथा धूम्ररहित अग्नि देखी। वह अग्नि ऐसी मालूम होती थी मानो होने वाले पुत्र का मूर्तिधारी प्रताप ही हो ॥119॥ इस प्रकार सोलह स्वप्न देखने के बाद उसने देखा कि स्वर्ण के समान पीली कान्ति का धारक और ऊँचे कन्धों वाला एक ऊँचा बैल हमारे मुखकमल में प्रवेश कर रहा है ॥120॥

स्वप्नों का फल

स्वप्न के अनन्तर निद्रा भंग के पश्चात् जिनेन्द्र देव की माता उन महत्त्वपूर्ण स्वप्नों के यथार्थ रहस्य जानने के लिए स्नानादि करके शरीर को पवित्र बनाकर, जिनेन्द्र भगवान् के पिता के समीप जाकर, विनय से ब्रह्ममुहूर्त में देखे हुये स्वप्नों को बताकर उनके फल जानने के लिए जिज्ञासा की। जिनेन्द्र भगवान् के पिता विशेष ज्ञानी होने से स्वप्नों के यथार्थ फल अवगत करके अत्यन्त हर्ष उल्लासित होकर अग्र प्रकार के उत्तम वचन बोले—

श्रणु देवि महान् पुत्रो भविता ते गजेक्षणात् ।

समस्त भुवन ज्येष्ठो महावृषभ दर्शनात्॥155॥ आदिपुराण द्वादशं पर्व

हे देवी ! सुन हाथी के देखने से तेरे उत्तम पुत्र होगा, उत्तम बैल देखने से वह समस्त लोक में ज्येष्ठ होगा ।

सिंहेनानन्त वीर्योऽसौ दाम्ना सद्धर्म तीर्थकृत् ।

लक्ष्याभिषेकमाप्तासौ मेरोर्मूर्ध्नि सुरोत्तमैः ॥156॥ आदि पुराण

सिंह के देखने से वह अनन्त बल से युक्त होगा, मालाओं के देखने से समीचीन धर्मतीर्थ (आम्नाय) का चलाने वाला होगा, लक्ष्मी के देखने से वह सुमेरु पर्वत के मस्तक पर देवों के द्वारा अभिषेक को प्राप्त होगा ।

पूर्णेन्दुना जनाह्लादी भास्वता भास्वरद्युतिः । ॥156॥

कुम्भाभ्यां निधिभागी स्यात् सुखी मत्स्य युगेक्षणात् ॥157॥

पूर्ण चन्द्रमा के देखने से समस्त लोगों को आनन्द देने वाला होगा, सूर्य के देखने से देदीप्यमान प्रभा का धारक होगा, दो कलश देखने से अनेक निधियों को प्राप्त होगा । मछलियों का युगल देखने से सुखी होगा ।

सरसा लक्षणोद्भासी सो ऽब्धिना केवली भवेत् ।

सिंहासनेन साम्राज्यमवाप्स्यति जगद् गुरु : ॥158॥

सरोवर के देखने से अनेक लक्षणों से शोभित होगा, समुद्र के देखने से केवली होगा, सिंहासन के देखने से जगत् का गुरु होकर साम्राज्य को प्राप्त करेगा ।

स्वर्विमानावलोकेन स्वर्गादवतरिष्यति ।

फणीन्द्र भवनालोकात् सोऽवधिज्ञानलोचनः ॥159॥

देवों का विमान देखने से वह स्वर्ग से अवतीर्ण होगा, नागेन्द्र का भवन देखने से अवधि ज्ञान रूपी लोचनों से सहित होगा ।

गुणानामाकरः प्रोद्यद्रत्नराशि निशामनात् ।

कर्मेन्धन धगप्येष निर्धूमज्वलनेक्षणात् ॥160॥

चमकते हुए रत्नों की राशि देखने से गुणों की खान होगा, और निर्धूम अग्नि के देखने से कर्म रूपी ईंधन को जलाने वाला होगा ।

वृषभाकारमादाय भवत्यास्य प्रवेशनात् ।

त्वद्गर्भे वृषभो देवः स्वामाधास्यति निर्मले ॥161॥

तथा तुम्हारे मुख में जो वृषभ ने प्रवेश किया है उसका फल यह है कि तुम्हारे निर्मल गर्भ में भगवान वृषभदेव अपना शरीर धारण करेंगे ।

अष्टाङ्ग निमित्त विद्या में एक स्वप्न निमित्त रूप विज्ञान है । स्वप्न के माध्यम से भूत-भविष्यत्, हानि, लाभ को जान लेना स्वप्न विज्ञान है । नीरोगी, चिंता रहित व्यक्ति योग्य समय में जो स्वप्न देखता है उसका शुभाशुभ फल निश्चित रूप में प्राप्त होता है । आचार्यों ने कहा है—"अस्वप्न पूर्वं हि जीवानां नहि जातु शुभा-शुभम्" जीवों के कभी भी स्वप्न दर्शन के बिना शुभ तथा अशुभ नहीं होता है ।

माता ने जो 16 स्वप्न देखे, वह स्वप्न, तीर्थंकर भगवान के आगमन की शुभ सूचना थी। महापुरुष के गर्भ में आने के पहले माता शुभ स्वप्न देखती है। पापी जीव के गर्भ में आने के पहले माता अशुभ स्वप्न देखती है। स्वप्न दर्शन के अनन्तर जगतुद्धारक भावी तीर्थंकर भगवान गर्भ में अवतरित हो गये।

जिस प्रकार धनिक लोग अपनी अमूल्य विधि की सुरक्षा करते हैं उसी प्रकार तीन लोक की निधि गर्भस्थ तीर्थंकर कुमार की सुरक्षा के लिये माता-पिता पुरजन के साथ-साथ स्वर्ग के देव-देवियाँ भी तत्पर रहने लगे।

जन्म कल्याणक—

अथातो नवमासा नामत्यये सुषुवे विभुम्।
देवी देवीभिरुक्ताभिर्यथास्वं परिवारिता ।।1।। आदि पुराण पर्व 13 ।।

अथानन्तर, ऊपर कही हुई श्री, ह्री आदि देवियाँ जिसकी सेवा करने के लिये सदा समीप में विद्यमान रहती हैं, ऐसी माता मरुदेवी ने नव महीने व्यतीत होने पर भगवान् वृषभदेव को उत्पन्न किया।

प्राचीव बन्धुमब्जानां सा लेभे भास्वरं सुतम्।
चैत्रे मास्यसिते पक्षे नवम्यामुदये खे: ।।2।। आदि पुराण
विश्वे ब्रह्म महायोगे जगतामेक वल्लभम्।
भासमानं त्रिभिर्बोधैः शिशुमव्य शिशुं गुणैः ।।3।।

जिस प्रकार प्रातः काल के समय पूर्व दिशा कमलों को विकसित करने वाले प्रकाशमान सूर्य को प्राप्त करती है उसी प्रकार माया देवी भी चैत्र कृष्ण नवमी के दिन सूर्योदय के समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र और ब्रह्म नामक महायोग में मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों से शोभायमान, बालक होने पर भी गुणों से वृद्ध तथा तीनों लोकों के एकमात्र स्वामी देदीप्यमान पुत्र को प्राप्त किया ।।2-3।।

त्रिबोध किरणोद्भासि बालार्कोऽसौ स्फुरद्द्युतिः।
नाभिराजोदयादिन्द्रादुदितो विबभौ विभु: ।।4।।

तीन ज्ञान रूपी किरणों से शोभायमान अतिशय कांति का धारक और नाभि-राज रूपी उदयाचल से उदय को प्राप्त हुआ वह बालक रूपी सूर्य बहुत ही शोभायमान होता था।

दिशः प्रसत्तिमासेदु रासीन्निर्मलमम्बरम्।
गुणानामस्य वैमल्यमनुकर्तुमिव प्रभो: ।।5।।

उस समय समस्त दिशायें स्वच्छता को प्राप्त हुई थीं और आकाश निर्मल हो गया था। ऐसा मालूम होता था मानो 'भगवान् के गुणों की अनुकरण करने के लिये ही दिशायें और आकाश स्वच्छता को प्राप्त हुए हों।

प्रज्ञानां ववृधे हर्षः सुरा विस्मयमाश्रयन्।
अम्लानि कुसुमान्युच्चैर्मुमूचु: सुरभूरुहाः ।।6।।

उस समय प्रजा का हर्ष बढ़ रहा था, देव आश्चर्य को प्राप्त हो रहे थे और कल्पवृक्ष ऊँचे से प्रफुल्लित फूल बरसा रहे थे।

अनाहताः पृथुध्वाना दध्वनुर्दिविजानकाः ।
मृदुः सुगन्धिः शिशिरो मरुन्मन्दं तदा ववौ ॥7॥

देवों के दुन्दुभिः बाजे बिना बजाये ही ऊँचा शब्द करते हुए बज रहे थे और कोमल शीतल तथा सुगन्धित वायु धीरे-धीरे बह रही थी।

प्रचचाल मही तोषात् नृत्यन्तीव चलद्गिरिः ।
उद्वेलो जलधिर्नूनमगमत् प्रमदं परम् ॥8॥

उस समय पहाड़ों को हिलाती हुई पृथ्वी भी हिलने लगी थी मानो संतोष से नृत्य ही कर रही हो और समुद्र भी लहरा रहा था मानो परम आनन्द को प्राप्त हुआ हो ॥

प्रत्येक द्रव्य, क्षेत्र, काल भावों का परिणाम दूसरे द्रव्यों के ऊपर तथा परिसर के ऊपर भी पड़ता है। महत्त्वपूर्ण विशिष्ट द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों का परिणाम और भी अधिक प्रभावशाली होता है। जिस प्रकार एक सामान्य दीपक भी अपने परिसर को प्रभावित करता है। नक्षत्र, ग्रह, चन्द्र, सूर्य आदि अधिक वातावरण को प्रभावित करते हैं। उसी प्रकार पुण्य-शाली महामानव जगत् उद्धारक महापुरुषों के जन्म के समय में देव मनुष्य, पशु-पक्षी यहाँ तक कि प्रकृति भी अधिक प्रभावित हो जाती है। जैसे—सूर्य उदय से घनान्धकार का विलय होता है, कमल खिल जाते हैं, वस्तु स्पष्ट दिखाई देने लगती है एवं जीवन में नवीन चेतना, नवीन स्फूर्ति जाग्रत हो जाती है, उसी प्रकार तीर्थंकर के जन्म के समय में भी आकाश निर्मल हो जाता है, देश की सुख-समृद्धि-वैभव-आदि की वृद्धि होने लगती है, दुःखी प्रजा सुखी हो जाती है, रोगी स्वास्थ्य को प्राप्त करता है, अंधे को आँखों से दिखाई देने लगता है, वनस्पतियाँ पुष्प-फलों से लद जाती हैं। एक क्षण के लिए तीन लोक में एक सुख-शान्तिमय वातावरण फैल जाता है। यहाँ तक कि सम्पूर्ण रूप से दुःखित नारकी भी एक क्षण के लिए शान्ति प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार तीर्थंकर के जन्मावसर पर विशेष घटना घटती है, उसी प्रकार कुछ अंश में बौद्ध धर्म में बुद्ध के जन्म के समय में तथा अन्यान्य धर्म में अपने-अपने धर्म प्रचारक पैगम्बर धर्मदूत आदि के जन्म के समय में भी घटती है ऐसा स्वयं के धर्म ग्रन्थों में पाया जाता है।

तीर्थंकरों के जन्म के 10 अतिशय—

णिस्सेदत्तं णिम्मल गत्तत्तं दुद्धधवलरुहिरत्तं ।
आदिमसंहडणत्तं, समचउरस्संग संठाणं ॥905॥ ति०प०अ०4 पृ० 278
अणुवमरुवत्तं णवचंपयवर सुरहिगंध धारितं ।
अट्ठुत्तर वरलक्खण सहस्स धरणं अणंतवल विरियं ॥906॥

मिदुहिदमधुरालाओ, साभाविय अदिसयं च दह भेदं ।
एवं तित्थयराणं जम्मग्गहणादि उप्पण्णं ।।907।।

तिलोयपण्णत्ति /अ० 4

1. स्वेद रहितता (खेद रहितता)
2. निर्मल शरीरता
3. दूध के समान धवल रुधिर
4. आदि का वज्रवृषभनाराच संहनन
5. समचतुरस्ररूप शरीर संस्थान
6. अनुपम रूप
7. नृप चम्पक की उत्तम गंध के समान गंध का धारण करना
8. 1008 (एक हजार आठ) उत्तम लक्षणों को धारण करना
9. अनन्त बल-वीर्य, तथा
10. हित-मित एवं मधुर-भाषण ।

ये स्वाभाविक अतिशय के 10 भेद हैं। यह 10 भेद रूप अतिशय तीर्थंकरों के जन्म ग्रहण से ही उत्पन्न हो जाते हैं ।

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नाँहि पसेव निहार ।
प्रिय हित वचन अतुल्यबल, रुधिर श्वेत आकार ।।
लक्षण सहस रू आठ तन, समचतुष्क संठान ।
वज्रवृषभ नाराच जुत, ये जनमत दस जान ।।

अतिशय सुन्दर रूप—

पूर्व भव में भावित उद्दात विश्व-प्रेम से प्रेरित 16 भावनाओं के कारण तीर्थंकर भगवान सर्वोत्कृष्ट सातिशय तीर्थंकर पुण्य कर्म का संचय किए थे उसके कारण ही उनके गर्भ के छह महीने पहले से ही रत्नवृष्टि हुई। जन्मावसर पर सम्पूर्ण विश्व, शान्ति रस से प्लावित हो गया। उस पुण्य कर्म से उनका शरीर अद्वितीय, 1008 सुलक्षणों से मण्डित विश्व की अनुपम सुन्दरता सहित था। इनके शरीर के अपूर्व सुन्दरता का कारण बताते हुए मानतुंगाचार्य, भक्तामर स्त्रोत में निम्न प्रकार बताते हैं—

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वम् ।
निर्मापितस्त्रिभुवनैक ललाम भूत ।।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां ।
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ।।12।। भक्तामर स्त्रोत ।।

इस तीन लोक में जितने शान्त, सुन्दर, रुचिकर, परमोत्कृष्ट, शुभ परमाणु थे, उनके समूह से ही भगवान के अद्वितीय मनमोहककारी ललामभूत शरीर का निर्माण हुआ। सम्पूर्ण उत्कृष्ट शुभ परमाणुओं से भगवान के शरीर का निर्माण होने से इस विश्व में पुण्य परमाणु शेष नहीं रहे। इसीलिए भगवान के शरीर के समान अन्य सुन्दर शरीर इस विश्व में नहीं है अर्थात् जितने शुभ परमाणु थे उससे भगवान

का शरीर निर्माण होने के कारण बाकी शुभ परमाणु नहीं रहा। जिससे भगवान के शरीर के तुल्य अन्य शरीर की रचना नहीं हुई अर्थात् भगवान का शरीर एकमेव विश्व में अद्वितीय सुन्दर शरीर है।

(2) स्वेद रहितता—

शरीर में जो मलांश है वह मलांश शरीर के विभिन्न द्वारों से निकलता है। जिस समय तरल मलांश रोम कूपों से बाहर निकलता है उसे स्वेद (पसीना) कहते हैं। परन्तु भगवान का शरीर सातिशय पुण्य परमाणुओं से बना होने के कारण उनके शरीर में मल का ही अभाव होता है। इसीलिये मल के अभाव में पसीना नहीं निकलता है।

(2) निर्मल शरीर—

मल-मूत्र आदि से रहित होने के कारण तीर्थंकर भगवान का शरीर अत्यन्त निर्मल होता है।

(3) दूध के समान धवल रुधिर—

मनुष्य के शरीर में दो प्रकार के रक्त कण होते हैं—(1) लोहित रक्त कण, और (2) श्वेत रक्त कण। लोहित रक्त कण शरीर के क्षय अंश को पूरित करता है एवं श्वेत रक्त कण में रोग प्रतिरोधक शक्ति होने के कारण अंग रक्षक के समान शरीर को बाह्य रोगाणु आदि से रक्षा करता है। वैज्ञानिक लोग विशेष करके मनोवैज्ञानिक, डॉक्टरों ने सिद्ध किया है जिनमें श्वेत रक्तकण अधिक होता है उनको रोग नहीं होता, यदि होता है तो किंचित् प्रमाण से होता है और शीघ्र ठीक हो जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि जिनका आहार-विहार, आचार-विचार. शुद्ध-पवित्र सात्विक होता है उनमें अधिक श्वेत रक्तकण पाया जाता है और वे व्यक्ति अधिक रोग ग्रस्त नहीं पाये जाते। जिस-जिस अंश में विशुद्ध आचार-विचार, परिणाम वृद्धि होते जाते हैं उस-उस अंश में श्वेत रक्तकण वृद्धि को प्राप्त होते जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार तीर्थंकर सतत् विशुद्ध से विशुद्धतर तथा विशुद्धतम सात्विक आचार-विचार में तल्लीन रहते हैं, इसलिये उनके सम्पूर्ण शरीर के रक्तकण दूध के सदृश श्वेत रक्त कण बन जाता है तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

एक कन्या ऋतुमति तथा विवाहित होने तक जब तक सन्तान उत्पन्न नहीं होती है, तब तक स्तन में दूध संचार नहीं करता है। परन्तु सन्तान उत्पन्न होते ही स्तनों में दूध रस संचार करने लगता है। क्या इसका मनोवैज्ञानिक रहस्य है? जब तक सन्तान उत्पन्न नहीं होती है तब तक नारी के हृदय में वात्सल्य प्रेम का संचार नहीं होता है। तब तक नारी सामान्य स्त्री रहती है परन्तु माता नहीं। जब सन्तान उत्पन्न होती है तब नारी के हृदय में पवित्र वात्सल्य-प्रेम की मंदाकिनी धारा बहने लगती है। तब सामान्य स्त्री प्रेम-दायिनी, वात्सल्य की साक्षात् जीवन-मूर्ति, ममतामयी माँ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। उपरोक्त पवित्र, उदात्त सेवा मनोभावों से उसके शरीर में एक प्रकार सूक्ष्म जैविक–रासायनिक प्रतिक्रिया होती

है। उससे आहार का रस-भाव अमृतमय जीवन शक्तिपूर्ण दूध रूप में परिवर्तित होता है। इसलिये सन्तानोत्पत्ति होते ही नारियों के स्तनों में दूध की धारा बहने लगती है। जब एक साधारण स्त्री को अपने सन्तान के प्रेम वात्सल्य से प्लावित होने के कारण उसके शरीर में दूध का संचार हो सकता है तब जगत् के एकैक अकारण बन्धु विश्व-प्रेम-मैत्री के जीवन-मूर्ति तीर्थंकर के सम्पूर्ण शरीर में दुग्ध समान धवल रक्तधारा का संचार होना अर्थात् दुग्ध के समान धवल रुधिर होना कोई अनहोनी, कपोल-कल्पित, अतिशयोक्ति नहीं है। उपरोक्त कारणों से सिद्ध होता है कि तीर्थंकरों के रुधिर दुग्ध के समान धवल थे।

(5) आदि का वज्रवृषभनाराच संहनन—

तीर्थंकर की अस्थि, अस्थि कीलक, अस्थिवेष्टन वज्रमय होता है।

(6) अनंत बल-वीर्य—

"जो कम्मे सुरासो, धम्मे सुरा" अर्थात् जो कर्म में शूर वीर्यवान होता है वह धर्म में भी शूर वीर्यवान होता है। प्रत्येक कार्य करने के लिये शक्ति की नितान्त आवश्यकता है। उपनिषद् में कहा है–'नहि बलहीनेन अयं आत्मा उपलब्धये' बलहीनों के द्वारा अर्थात् हीनवीर्य के द्वारा आत्मा की उपलब्धि नहीं हो सकती है। आत्मा का उद्धार करने वाले तथा जगत् का उद्धार करने वाले तीर्थंकर को अनन्त बल वीर्य की नित्यान्त आवश्यकता ही नहीं अनिवार्य भी है। इसीलिये तीर्थंकर जन्म से ही अनन्त बल-वीर्यवान होते हैं।

(7) समचतुरस्त्ररूप संस्थान—

भगवान के शरीर का संगठन, स्थान, प्रमाण एवं आकार-प्रकार की अपेक्षा अत्यन्त सुन्दर समचतुरस्र संस्थान वाला था।

(8) 1008 उत्तम लक्षणों का धारण करना—

भगवान का शरीर अनुपम सौन्दर्य का केन्द्र था। उनके शरीर में (1) श्रीवृक्ष, (2) शंख, (3) कमल, (4) स्वस्तिक, (5) अंकुश, (6) तोरण, (7) चमर, (8) श्वेत छत्र, (9) सिंहासन, (10) ध्वज, (11) मीन युगल, (12) दो कुम्भ, (13) चक्र, (14) समुद्र, (15) सरोवर, (16) नागेन्द्र-भवन, (17) हाथी, (18) सिंह आदि 108 मुख्य लक्षण तथा 900 व्यञ्जन अर्थात् सामान्य लक्षण सब मिलाकर 1008 सुलक्षण से युक्त था।

(9) सौरभ—

सर्वोत्कृष्ट पुण्य परमाणुओं से उनका शरीर निर्माण होने के कारण उनके शरीर से नृप चम्पक के समान उत्तम गन्ध आती थी।

(10) हित-मित-प्रिय वचन—

महापुरुषों का हृदय अत्यन्त मृदु होने से एवं उनके हृदय में "सर्व जनहिताय सर्व जन सुखाय" की भावना ओत-प्रोत होने से उस हृदय से निसृत (निकला हुआ) वचन भी हित-मित-प्रिय होता है।

जन्म सन्देह का प्रचार

ततोऽबुद्ध सुराधीशः सिंहासन विकम्पनात् ।
प्रयुक्तावधिरुद्भूतिं जिनस्य विजितैनसः ॥9॥

आदि पुराण । पर्व 13 । पृ० 283

तदनन्तर सिंहासन कम्पायमान होने से अवधिज्ञान जोड़कर इन्द्र ने जान लिया कि समस्त पापों को जीतने वाले जिनेन्द्र देव का जन्म हुआ ।

ततो जन्माभिषेकाय मतिं चक्रे शतक्रतुः ।
तीर्थ कृद्भाविभव्याब्ज बन्धौ तस्मिन्नुदेयुषि ॥ 10 ॥

आगामी काल में उत्पन्न होने वाले भव्य जीव रूपी कमलों को विकसित करने वाले श्री तीर्थंकर रूपी सूर्य के उदित होते ही इन्द्र ने उनका जन्माभिषेक करने का विचार किया ।

तदासनानि देवानामकस्मात् प्रचकम्पिरे ।
देवानुच्चासनेभ्योऽधः पातयन्तीव संभ्रमात् ॥ 11॥

उस समय अकस्मात् सब देवों के आसन कम्पित होने लगे थे और ऐसे मालूम होते थे मानो उन देवों को बड़े संभ्रम के साथ ऊँचे सिंहासनों से नीचे ही उतर रहे हों ।

शिरांसि प्रचलन्मौलि मणीनि प्रणतिं दधुः ।
सुरासुर गुरोर्जन्म भावयन्तीव विस्मयात् ॥12॥

जिनके मुकुटों में लगे हुए मणि कुछ-कुछ हिल रहे हैं ऐसे देवों के मस्तक स्वमेव नम्रीभूत हो गये थे और ऐसे मालूम होते थे मानो बड़े आश्चर्य से सुर, असुर आदि सबके गुरु भगवान जिनेन्द्र देव के जन्म की भावना ही कर रहे हों ।

घण्टा कण्ठीर वध्वान भेरी शङ्खाः प्रदध्वनुः ।
कल्पेश ज्योतिषां वन्य भावनानां च वेश्मसु ॥13॥

उस समय कल्पवासी, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवों के घरों में क्रम से अपने आप ही घण्टा, सिंहनाद, भेरी और शंखों के शब्द होने लगे थे ।

तेषामुद्भिन्न वेलानामब्धीनामिव निःस्वनम् ।
श्रुत्वा बुबुधिरे जन्म विबुधा भुवनेशिनः ॥14॥

उठी हुई लहरों से शोभायमान समुद्र के समान उन बाजों का गम्भीर शब्द सुनकर देवों ने जान लिया कि तीन लोक के स्वामी तीर्थंकर भगवान् का जन्म हुआ है ।

ततः शक्राज्ञया देव पृतना निर्ययुर्दिवः ।
तारतम्येन साध्वाना महाब्धेरिव वीचयः ॥15॥

तदनन्तर महासागर की लहरों के समान शब्द करती हुई देवों की सेनाएँ इन्द्र की आज्ञा पाकर अनुक्रम से स्वर्ग से निकली ।

हस्त्यश्वर भगन्धर्व नर्तकी पत्तयो वृषाः ।
इत्यमूनि सुरेन्द्राणां महानीकानि निर्ययुः ॥16॥

हाथी, घोड़े, रथ, गन्धर्व, नृत्य करने वाली, पियादे (पैदल सैनिक) और बैल इस प्रकार इन्द्र की ये 7 बड़ी-बड़ी सेनाएँ निकलीं ।

जन्म सन्देश प्रसार का वैज्ञानिक कारण

यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि भगवान का जन्म तो भू-पृष्ट पर हुआ और स्वर्ग में इन्द्र का सिंहासन कम्पाय मान कैसे हुआ ? हमें सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने पर इसका समाधान स्पष्ट रूप से हो जाता है । जैनागम में **वर्णन** है कि 343 घन राजू **प्रमाण** इस विश्व में धर्म द्रव्य (ईथर) पूर्ण रूप से व्याप्त हैं । धर्म द्रव्य के माध्यम से जीव एवं पुद्गलों का गमनागमन होता है ।

पुद्गल दो प्रकार के हैं—

(1) अणु, (2) स्कंध ।

स्कन्ध अनेक प्रकार के होते हैं । एकाधिक परमाणु मिलने से स्कन्ध तैयार होता है । दो अणु से लेकर संख्यात, असंख्यात, अनंत, अनंतानंत परमाणु मिलकर विभिन्न प्रकार के स्कन्ध की संरचना करते हैं । सम्पूर्ण विश्व व्यापी स्कन्ध को महा-स्कन्ध कहते हैं। सूक्ष्म रूप से कहाँ-कहाँ पर एवं स्थूल रूप से कहाँ-कहाँ पर यह स्कन्ध विश्व में फैला हुआ है । जिस समय कोई एक निश्चित स्थान में परिस्पन्दन होता है, तब यह विश्व अखण्ड सर्व लोक व्यापी होने से एवं सम्पूर्ण लोक में धर्म द्रव्य (ईथर) व्याप्त होने से वह परिस्पन्दन शक्ति अनुसार फैलता हुआ सम्पूर्ण विश्व को परिस्पन्दित करके शक्ति अनुसार फैलता हुआ दूर तक व्याप्त होकर क्षीण हो जाता है । परन्तु कुछ विशिष्ट शक्तिशाली परिस्पन्दन क्रम से फैलता हुआ सम्पर्ण विश्व में व्याप्त हो जाता है एवं विश्व के कण-कण को आन्दोलित कर देता है । जिस प्रकार जलाशय में पत्थर फेंकने पर उस पत्थर के आघात से जलाशय का जल तरंगित हो जाता है और वे तरंगें फैलती हुई जलाशय के तट तक पहुँच जाती हैं । वे जल तरंगें तरंगित होते हुए जल को आलोड़ित कर देती हैं, उसके साथ-साथ जल में स्थित द्रव्यों को भी आलोडित कर देती हैं ।

(इस विषय का विशेष वर्णन आगे किया जायेगा । विशेष जिज्ञासु वहाँ से देखने का कष्ट करें ।

इस सिद्धान्त के अनुसार मारकोनी ने रेडियो का आविष्कार किया था और इस सिद्धान्तानुसार टी. वी. टेलीफोन, वायरलेस, रेडार आदि वैज्ञानिक यन्त्रों का आविष्कार हुआ । जैसे रेडियो सेंटर से गाना, भाषण आदि प्रसारित होकर दूर-दूर तक फैल जाता है एवं दूर में भी उस गानादि को रेडियो आदि के माध्यम से हम सुन सकते हैं । उसी प्रकार जब तीर्थंकर भगवान जन्म लेते हैं, उस समय तीर्थंकर के शक्तिशाली पुण्य प्रभाव से सम्पूर्ण विश्व सूक्ष्मशाली तरंगों से तरंगित हो जाता है । उन शक्तिशाली तरंगों से आलोड़ित होकर इन्द्र का सिंहासन कम्पायमान होता है ।

स्वर्ग में घण्टा, भेरी, शंख आदि शब्दायमान होते हैं। जैसे एक अखण्ड लम्बी धातु की शलाका (छड़) के एक अंश में तरंगित करने से सम्पूर्ण छड़ तरंगित हो जाती है या एक अंश को गर्म करने से धीरे-धीरे सम्पूर्ण छड़ गर्म हो जाती है उसी प्रकार तीर्थंकर के समय में सम्पूर्ण विश्व परिस्पंदित हो जाता है।

जन्माभिषेक

अथ सौधर्म कल्पेशो महैरावतदन्तिनम्।
समारुह्य समं शच्या प्रतस्थे विबुधैर्वृतः ॥17॥

आदि पुराण। पर्व 13

तदनन्तर सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने इद्राणी सहित बड़े भारी (एक लाख-योजन विस्तृत) ऐरावत हाथी पर चढ़कर अनेक देवों से परिवृत हो प्रस्थान किया।

देव विक्रया से निर्मित अद्भुत-पूर्ण ऐरावत हाथी

अनेक मुखदन्त सत्कमल खण्ड पत्रावली।
सुरुपसुर सुन्दरी ललित नाटकोद्भासिनं।
हिमाद्रिमिव जंगमं निजवधूभिरैरावतं।
करीद्रंमधिरुढ़वानभिरराज सौधर्मपः ॥21॥

हरिवंश पुराण। सर्ग 38 पृ० 481

सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी आदि देवियों के साथ ऐरावत गजदंत पर आरुढ़ होकर अत्यन्त शोभायमान होने लगा। वह ऐरावत में अनेक मुख और कमल खिले थे, और प्रत्येक कमल में अनेक कमल के दल थे और कमलों के प्रत्येक पत्र पर महान स्वरूप को धारण करने वाली सुरसुन्दरी नृत्य कर रही थीं। वह गजेन्द्र चलता हुआ हिमालय के सदृश्य ही जान पड़ता था। ऐरावत हाथी, पशु जाति हाथी नहीं है परन्तु एक वाहन जाति देव अपनी विक्रिया से ऐरावत हाथी का रूप धारण करता है। इस ऐरावत हाथी का विशेष वर्णन मुनिसुव्रत काव्य में निम्न प्रकार है—

द्वात्रिंशदास्यानि मुखेऽष्टदन्ता दन्तेऽब्धि रब्धौ बिसिनी बिसिन्यां।
द्वात्रिंशदब्जानि दलानि चाब्जे द्वात्रिंशदिद्र द्विरदस्यरेजु ॥5-22॥

उस ऐरावत हाथी के 32 मुख थे, प्रत्येक मुख में 8-8 दन्त थे, प्रत्येक दन्त पर एक-एक सरोवर था, प्रत्येक सरोवर पर एक-एक कमलिनी थी, एक-एक कमलिनी पर 32-32 कमल दल थे, कमल के प्रत्येक पत्ते पर 32-32 देवाङ्गनाएँ मधुर नृत्य कर रही थीं। इस प्रकार 32 मुख, 256 दन्त, 8197 कमल, 2,62,144 कमल पत्र थे तथा 83,88,608 देवाङ्गनाएँ मधुर नृत्य कर रही थीं।

उपरोक्त ऐरावत हस्ती का वर्णन अद्भुत चमत्कार पूर्ण है। देव लोक अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व आदि 8 दैविक ऋद्धि से सम्पन्न होते हैं। ऋद्धियों का विशेष वर्णन पहले किया गया है। विशेष जिज्ञासु वहाँ देखने

का कष्ट करें। उन ऋद्धियों के माध्यम से देवलोग विभिन्न वैचित्र्यपूर्ण रूपों को धारण करने में समर्थ होते हैं। पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म से जो देवलोक में उत्पन्न होते हैं, उनको उपरोक्त ऋद्धियाँ स्व-स्व पुण्य प्रभाव से यथा योग्य न्यूनाधिक प्राप्त होती हैं। वर्तमान विशेषत: देव लोगों का आगमन इस क्षेत्र में नहीं होने से तथा ऋद्धि सम्पन्न कोई विशेष ऋषि आदि का अभाव होने से उपरोक्त वर्णन कपोल कल्पित अभिरंजित प्रतिभास होता है। परन्तु उनको प्रत्येक द्रव्य में तथा जीव में अनन्त शक्तियों का परिज्ञान हो जायेगा तब उपरोक्त वर्णन उसके लिए अतिशयोक्ति रूप प्रतीत नहीं होगा। आधुनिक भौतिक विज्ञान को जानने वाले पाठकों को ज्ञात है कि एक ही वस्तु विभिन्न दर्पणों के माध्यम से क्षुद्र एवं वृहत् दिखाई देती है। समतल दर्पण में प्रति-बिम्ब वस्तु के सम परिमाण में रहता है। उत्तल दर्पण में प्रतिबिम्ब वस्तु के सम परिमाण से अधिक दिखाई देता है। ये सब विचित्रता पुद्गल की संरचना के माध्यम से होता है। छोटे कैमरे में अतिविशाल वृक्ष, मनुष्य, पर्वत आदियों के प्रतिबिम्ब अपने सूक्ष्म परिणमन के कारण प्रतिबिंबित हो जाते हैं। सिनेमा, टी० वी० आदि की रील में स्थित छोटे-छोटे प्रतिबिम्ब विद्युत शक्ति के माध्यम से विस्तृत होकर पर्दे पर विशाल रूप धारण करते हैं। एक छोटी-सी उद्‌बत्ती (अगरबत्ती) अग्नि के सम्पर्क से जलकर विस्तार को प्राप्त होकर धुआँ रूप से बड़े-बड़े प्रकोष्ठ को व्याप्त कर लेती है। एक छोटी-सी इलेस्टिक या रबर को खींचने से बहुत लम्बे हो जाते हैं। रबर के बैलून में वायु पूरित करने से बैलून फैलकर मूल बैलून से 100-200 गुणा बड़ा हो जाता है। इसी प्रकार देव लोग दैविक ऋद्धि-शक्ति से विभिन्न रूप धारण कर लेते हैं।

जन्माभिषेक के लिये मेरू शिखर के लिए प्रयाण—

महान उल्लास से उल्लासित होकर सौधर्म आदि देव चतुर्निकाय देवों सहित विभिन्न प्रकार वाद्य बजाते हुए, नृत्य करते हुए और अपने-अपने विमान और वाहन में आरूढ़ होकर त्रिभुवन के स्वामी तीर्थंकर की जन्म नगरी के ऊपर आकाश में आ पहुँचते हैं। आकाश से शीघ्रता से जमीन पर उतरकर नगरी में प्रवेश करके भगवान के पवित्र जन्म-गृह के आँगन में पहुँचते हैं। केवल इन्द्राणी जन्म प्रकोष्ठ में पहुँचकर सद्‌जात्य बाल तीर्थंकर को देखकर अत्यन्त आल्हादित होकर जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार कर जगदम्बा जिन माता की स्तुति करती है। मायामयी नींद से माता को युक्त कर उसके आगे मायामयी दूसरा बालक रखकर तीर्थंकर को उठाकर बाहर लाकर इन्द्र को देती है। वहाँ से इन्द्रादिक देव तथा विद्याधर लोग अपने-अपने वायुयान में बैठकर 99 हजार योजन ऊँचे सुमेरू शिखर की ओर प्रयाण करते हैं। जन्माभिषेक देखने के लिए कुछ चारण ऋद्धि-धारी मुनि महाराज भी सुमेरू शिखर की ओर प्रयाण करते हैं।

कृतं सोपानमामेरोरिन्द्रनीलैर्व्यराजत।
भक्त्या खमेव सोपान परिणाम मिवाश्रितम् ।।64।।

आदि पुराण त्रयोदशपर्व

मेरू पर्वत पर्यन्त नील मणियों से बनायी हुई सीढ़ियाँ ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानो आकाश ही भक्ति से सीढ़ी रूप पर्याय को प्राप्त हुआ हो।

ज्योतिः पटलमुल्लंङ्घ्य प्रययुः सुर नायकाः।
अधस्तारकितां वीथिं मन्यमानाः कुमुद्वतीम् ॥65॥

क्रम-क्रम से वे इन्द्र ज्योतिष-पटल को उल्लंघन कर ऊपर की ओर जाने लगे। उस समय वे नीचे ताराओं सहित आकाश को ऐसा मानते थे मानो कुमुदिनियों सहित सरोवर ही हो।

ततः प्रापुः सुराधीशा गिरिराजं तमुच्छ्रितम्।
योजनानां सहस्राणि नवतिं च नवैव च ॥66॥

तत्पश्चात् वे इन्द्र निन्यानवे (99) हजार योजन ऊँचे उस सुमेरू पर्वत पर जा पहुँचे।

मुकुटश्रीरिवाभाति चूलिका यस्य मूर्द्धनि।
चूडारत्नश्रियं धत्ते यस्यामृतु विमानकम् ॥67॥

जिसके मस्तक पर स्थित चूलिका मुकुट के समान सुशोभित होती है और जिसके ऊपर सौधर्म स्वर्ग का ऋतुविमान चूड़ामणि की शोभा धारण करता है।

भू पृष्ठ से 790 योजन अर्थात् 31,60,000 मील ऊपर जाकर ज्योतिष्क विमानों का प्रारम्भ होता है। 790 से लेकर 900 यो० तक अर्थात् 190 यो० के मध्य में सम्पूर्ण ज्योतिष विमानों का अवस्थान है। ये सम्पूर्ण विमानों को लांघकर 98900 यो० अर्थात् 39,24,00000 मील ऊपर गमन करके विश्व का सर्वोच्च पर्वत सुमेरू शिखर पर पहुँचते हैं जिसकी ऊँचाई भू पृष्ठ से 99000 यो० अर्थात् 39,60,00000 मील है। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में मनुष्यों के पास अत्यन्त तीव्रगतिशील विमान था जिससे मनुष्य सुदूर आकाश यात्री होने में समर्थ था। ज्योतिष विज्ञान का वर्णन आगे किया जायेगा वहाँ से पाठक देखने की कृपा करें।

भगवान का जन्माभिषेक—

हर्ष पूर्वक देव सहित विद्याधर चारण ऋद्धिमुनि शीघ्रातिशीघ्र सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिष विमानों को अतिक्रम करके गिरिराज सुमेरू शिखर पर पहुँचे। अनेक अकृत्रिम जिनालयों से मण्डित एवं अनंत बार जिनाभिषेक के कारण पूत सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करके सुमेरु के शिखर पर हर्षपूर्वक बाल सूर्य के समान श्री जिनेन्द्र भगवान् को इन्द्र ने विराजमान किया। जन्माभिषेक करने की भावना से उत्साहित होकर देव लोग जलचर एवं द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों से रहित क्षीर (दूध) के समान मधुर वाला पांचवें क्षीर समुद्र से कलशों से जल भरकर के लाये।

अभिषेक कलशों का वर्णन—

अष्ट योजन गम्भीरैर्मुखे योजन विस्तृतैः।
प्रारेभे काञ्चनैः कुम्भैः जन्माभिषवणोत्सवः ॥113॥

आदि पुराण। पर्व 13

8 योजन गहरे (64 मील), मुख पर एक योजन (8 मील) चौड़े और उदर में 4 योजन (32 मील) चौडे सुवर्णमय कलशों से भगवान के जन्माभिषेक का उत्सव प्रारम्भ किया गया था।

महामाना विरेजुस्ते सुराणामुद्धृता करैः।
कलशाः कल्मषोन्मेष मोषिणो विघ्नकाषिणः ॥114॥

कालिमा अथवा पाप के विकास को चुराने वाले, विघ्नों को दूर करने वाले और देवों के द्वारा हाथों हाथ उठाये हुये वे बड़े भारी कलश बहुत ही सुशोभित हो रहे थे।

प्रादुरासन्नभो भागे स्वर्णकुम्भा धृतार्णसः।
मुक्ताफलाञ्चित ग्रीवाश्चन्दन द्रव चर्चिताः ॥115॥

जिनके कण्ठ भाग अनेक प्रकार के मोतियों से शोभायमान हैं जो घिसे हुए चन्दन से चर्चित हो रहे हैं और जो जल से लबालब भरे हुए हैं ऐसे वे सुवर्ण कलश अनुक्रम से आकाश में प्रकट होने लगे।

तेषामन्योऽन्य हस्ताग्र संक्रान्तैर्जलपूरितैः।
कलशैर्व्यानशे व्योमहैमैः सांध्यै रिवाम्बुदैः ॥116॥

देवों के परस्पर एक के हाथ से दूसरे के हाथ में जाने वाले और जल से भरे हुए उन सुवर्णमय कलशों से आकाश ऐसा व्याप्त हो गया था मानो वह कुछ-कुछ लालिमायुक्त सन्ध्याकालीन बादलों से ही व्याप्त हो गया हो।

विनिर्ममे बहून् बाहून् तानादित्सुः शताध्वरः।
स तैः साभरणैर्भेजे भूषणाङ्ग इवाङ्घ्रिपः ॥117॥

उन सब कलशों को हाथ में लेने की इच्छा से इन्द्र ने अपने विक्रिया-बल से अनेक भुजाएँ बना लीं। उस समय आभूषण सहित उन अनेक भुजाओं से वह इन्द्र ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भूषणांग जाति का कल्पवृक्ष ही हो।

दोः सहस्रोद् धृतैः कुम्भैः रौक्मैर्मुक्ताफलाञ्चितैः।
भेजे पुलोमजाजानिः भाजनाङ्ग द्रुमोपमाम् ॥118॥

अथवा वह इन्द्र एक साथ हजार भुजाओं द्वारा उठाये हुए और मोतियों से सुशोभित उन सुवर्णमय कलशों से ऐसा शोभायमान होता था मानो भाजनाङ्ग जाति का कल्पवृक्ष ही हो।

अभिषेक—

जयेति प्रथमां धारां सौधर्मेन्द्रो न्यपातयत्।
तथा कलकलो भूयान् प्रचक्रे सुरकोटिभिः ॥119॥

सौधर्मेन्द्र ने जय-जय शब्द का उच्चारण कर भगवान् के मस्तक पर पहली जल धारा छोड़ी उसी समय जय, जय, जय बोलते हुये अन्य करोड़ों देवों ने भी बड़ा भारी कोलाहल किया था।

सैषा धारा जिनस्याधिमूर्द्ध रेजे पतन्त्यपाम्।
हिमाद्रेः शिरसीवोच्चैर च्छिन्नाम्बुर्द्युनिम्नगा ॥120॥

जिनेन्द्र देव के मस्तक पर पड़ती हुई वह जल की धारा ऐसी शोभायमान होती थी मानो हिमवान् पर्वत के शिखर पर ऊँचे से पड़ती हुई अखण्ड जलवाली आकाश गंगा ही हो।

ततः कल्पेश्वरैः सर्वैः समं धारा निपातिताः।
संध्याभ्रैरिव सौवर्णैः कलशैरम्बु संभृतैः ॥121॥
महानद्य इवापप्तन् धारा मूर्धनीशितुः।
हेलयैव महिम्नासौ ताः प्रत्यैच्छद् गिरीन्द्रवत् ॥122॥

तदनन्तर अन्य सभी स्वर्गों के इन्द्रों ने सन्ध्या समय के बादलों के समान शोभायमान जल से भरे हुए सुवर्णमय कलशों से भगवान् के मस्तक पर एक साथ जल धारा छोड़ी। यद्यपि वह जल धारा भगवान् के मस्तक पर ऐसी पड़ रही थी मानो गंगा सिन्धु आदि महानदियाँ ही मिलकर एक साथ पड़ रही हों तथापि मेरु पर्वत के समान स्थिर रहने वाले जिनेन्द्र देव उसे अपने महात्म्य से लीलामात्र में ही सहन कर रहे थे।

विरेजुरच्छटा दूरमुच्चलन्त्यो नभोऽङ्गणे।
जिनाङ्ग स्पर्श संसर्गात् पापान्मुक्ता इवोद्ध्वंगाः ॥123॥

उस समय कितनी ही जल की बूंदे भगवान् के शरीर का स्पर्श कर आकाश-रूपी आँगन में दूर तक उछल रही थीं और ऐसी मालूम होती थीं मानो उनके शरीर के स्पर्श से पाप रहित होकर ऊपर को ही जा रही हों।

काश्चनोच्चलिता व्योम्नि विबभुः शीकरच्छटाः।
छटामिवामरावास प्राङ्गणेषु तितांसवः ॥124॥

आकाश में उछलती हुई कितनी ही पानी की बूंदे ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानो देवों के निवासग्रहों में छींटे ही देना चाहती हों।

तिर्यग्विसारिणः केचित् स्नानाम्भश्शीकरोत्कराः।
कर्णपूरश्रियं तेनुर्दिग्वधूमुखसङगिनीम् ॥125॥

भगवान के अभिषेक जल के कितने ही छींटे दिशा-विदिशाओं में तिरछे फैल रहे थे और वे ऐसे मालूम होते थे मानों दिशारूपी स्त्रियों के मुखों पर कर्ण फूलों की शोभा ही बढ़ा रहे हों।

निर्मले श्रीयतेरङ्गे पतित्वा प्रतिबिम्बिताः।
जल धाराः स्फुरन्ति स्म दिष्टि वृद्धयेव या वृद्ध्येव संगताः ॥126॥

भगवान् के निर्मल शरीर पर पड़कर उसी में प्रतिबिंबित हुई जल की धारायें ऐसी शोभायमान हो रही थीं कि मानो अपने को बड़ा भाग्यशाली मानकर उन्हीं के शरीर के साथ मिल गई हों।

गिरेरिव विभोर्मूर्ध्नि सुरेन्द्राभैर्निपातिताः ।
विरेजुर्निर्झराकारा धाराः क्षीरार्णवाम्भसाम् ॥127॥

भगवान के मस्तक पर इन्द्रों द्वारा छोड़ी हुई क्षीर समुद्र के जल की धारा ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो किसी पर्वत के शिखर पर मेघों द्वारा छोड़े हुए सफेद झरने ही पड़ रहे हों।

तीर्थंकर का लाञ्छन

अभिषेक के पश्चात् भगवान् के दाहिने अँगूठे में जो विशिष्ट चिन्ह रहता है। पहिचान के लिये उसको लाञ्छन रूप से इन्द्र घोषणा करता है। जैसे—आदिनाथ (ऋषभदेव) के दाहिने अँगूठे में ऋषभ (बैल) का चिन्ह था। इसीलिये आदिनाथ भगवान् का लाञ्छन वृषभ है।

तीर्थंकर के आभूषण निर्माण करण्ड

इन्द्र भगवान को स्वर्ग के पिटारों से निर्मित दिव्य सुन्दर वस्त्र आभूषण पहनाता है।

तस्साग्गे इगिवासो छत्तीसुदओ सबीढ वज्जमओ ।
माणत्थंभो गोरुद वित्थारय बारकोडिजुदो ॥519॥

त्रिलोकसार-बैमा-लोकाधिकार पृ० 546

सभा मण्डप के आगे एक योजन (8 मील) विस्तीर्ण, चौड़ा 36 योजन (266 मील) ऊँचा, पाद पीठ से युक्त वज्रमय मानस्तंभ है। इसका आकार गोल और व्यास एक योजन अर्थात् 4 कोश है। इसमें एक-एक कोश विस्तार वाली बारह धारायें हैं।

चिट्ठंन्ति तथ्य गोरुद चउत्थ वित्थार कोसदीहजुदा ।
तित्थयरा भरणचिदा करण्डया रयण सिक्कधिया ॥520॥

उस मान स्तम्भ पर एक कोस लम्बे और पाव कोस विस्तृत रत्नमयी सींकों के ऊपर तीर्थंकरों के पहिनने योग्य अनेक प्रकार के आभरणों से भरे हुए करण्ड (पिटारे) स्थित हैं।

तुरिय जुद विजुद छज्जोय णाणि उवरिं अधोवि ण करण्डा ।
सोहम्मदुगे भरहेरावदतित्थयर पडिबद्धा ॥521॥

साणक्कुमार जुगले पुव्ववरविदेह तित्थयर भूसा ।
ठविदाच्चिदा सुरेहिं कोडी परिणाह बारंसो ॥522॥

मान स्तम्भों की ऊँचाई 36 योजन है। $\frac{1}{4}$ भाग से सहित 6 योजन अर्थात् ($\frac{25}{4}$ योजन) $6\frac{1}{4}$ योजन के उपरिम भाग में और $\frac{1}{4}$ भाग रहित 6 योजन ($6-\frac{1}{4}=\frac{23}{4}$) अर्थात् पौने छह योजन नीचे के भाग में करण्ड नहीं है। सौधर्म कल्प में स्थित मान स्तम्भ पर स्थापित करण्डों के आभरण भरत क्षेत्र सम्बन्धी तीर्थंकरों के लिये हैं। ऐशान कल्प में स्थित मानस्तम्भ पर स्थापित करण्डों के आभरण एवं विदेह क्षेत्र सम्बन्धी तीर्थंकरों के लिये और माहेन्द्र कल्प में स्थित मान स्तम्भ पर स्थापित करण्डों के आभरण एवं विदेह क्षेत्र सम्बन्धी तीर्थंकरों के लिये हैं। ये सभी करण्ड देवों द्वारा स्थापित और पूजित हैं। इन मानस्तंभों की धाराओं का अन्तर मानस्तंभ की परिधि ($3 \times 4 = 12$ कोस) का बारहवाँ भाग अर्थात् एक कोस का है।

पासे उववादगिहं हरिस्स अडवास दीहरुदयजुदं।
दुगरयण सयण मज्झं वराजिणगेहं बहुकूडं ॥523॥

मानस्तंभ के पार्श्व भाग में 8 योजन लम्बा, 8 योजन चौड़ा और 8 ही योजन उपपाद गृह है, जिसके मध्य भाग में रत्नमयी दो शय्या हैं तथा जिसके पास ही बहुत कूटों (शिखरों) से सहित उत्कृष्ट जिन मंदिर हैं। इन्द्र रोज तीर्थंकर के लिये योग्य आभूषण पोशाक लाकर देता है। तीर्थंकर प्रत्येक दिन नवीन-नवीन अलंकार एवं पोशाक धारण करते हैं।

इन्द्र अभिषेक के उपरान्त अंतरंग में भक्तिवशतः अत्यन्त आह्लादित होकर तांडव नृत्य करता है। पुनः तीर्थंकर को ऐरावत हस्ती में विराजमान करके वापिस लाकर ससम्मान माता-पिता को समर्पण करते हैं।

तीर्थंकरों के गृहस्थ जीवन-यापन—तीर्थंकर अत्यन्त पुण्यशाली महापुरुष होने के कारण उनका जीवन-यापन अत्यन्त वैभवपूर्ण एवं सुखशान्तमय होता है। पूर्व संस्कार से प्रेरित होकर वर्तमान जीवन भी नीति, नियम, सदाचार एवं संयमपूर्ण होता है। आदिपुराण में आचार्य जिनसेन स्वामी तीर्थंकर के संयमित जीवन के लिये निम्न प्रकार वर्णन किये हैं—

स्वायुराद्यष्टवर्षेभ्यः सर्वेषां परतो भवेत्।
उदिताष्टकषायाणां तीर्थेशां देशसंयमः ॥6–35॥

(आदिपुराण)

सर्व तीर्थंकर अपनी आयु के आरम्भ के आठ वर्ष के आगे श्रावक योग्य देशसंयम धारण करते हैं क्योंकि उनके अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानवरण कषायों के अनुदय तथा प्रत्याख्यानवरण तथा संज्वलन कषाय उदयावस्था में रहते हैं।

ततोऽस्य भोगवस्तूनां साकल्येपि जितात्मनः।
वृत्तिर्नियमितैकाभूदसंख्येय गुण निर्जरा ॥6–36॥

(आदिपुराण)

यद्यपि इन तीर्थंकर देव के भोग्य वस्तुओं की परिपूर्णता थी तथापि वे जितात्मा थे और उनकी प्रवृत्ति नियमित रूप से अर्थात् संयमित रूप से होती थी इससे असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा होती थी।

तीर्थंकरों के छद्मस्थकाल में आहार है परन्तु नोहार नहीं—

तित्थयरा-तप्पियरा हलहरचक्की इ-वासुदेवाहि।
पडिवासुभोगभूमिय आहारो णत्थि णीहारो॥ (त्रिलोकसार)

छद्मस्थ तीर्थंकर उनके माता-पिता, बलदेव, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण तथा समस्त भोगभूमि जीवों के आहार हैं परन्तु नीहार नहीं है।

उपर्युक्त महापुरुष तथा भोगभूमिज जीव पुण्यशाली होने के कारण उनके शरीर की संरचना विशिष्ट होती है। वे लोग कवलाहार तो करते हैं परन्तु शौच-क्रिया उनकी नहीं होती है। कवलाहार अर्थात् खाद्य, पेय आदि वस्तुओं का भोजन करना। यहाँ पर एक सहज प्रश्न होता है यदि भोजन है तो निश्चित रूप में मल निष्कासन क्रिया भी होनी चाहिये। परन्तु उपरोक्त तथ्य में एक वैज्ञानिक सत्य निहित है। उपरोक्त महापुरुषों की जठराग्नि एक विशिष्ट प्रकार की होती है कि उसमें डाली गई सम्पूर्ण खाद्य वस्तु पूर्णतः रस, रुधिर आदि रूप में परिणित हो जाती है। ऐसा तत्त्व नहीं बचता है जो व्यर्थ होने के कारण मल-मूत्र रूप से बाहर निकाल दिया जाये।

आप लोगों के ध्यान में आया हुआ होगा कि एक निरोगी, शक्तिशाली जठराग्नि सम्पन्न व्यक्ति जो भोजन करता है वह उस भोजन से अधिक सार वस्तु को ग्रहण कर लेता है। इसलिये वह व्यक्ति योग्य, कम शौच करता है परन्तु जब वह व्यक्ति रोगी हो जाता है एवं जठराग्नि मन्द हो जाती हैं तब उस व्यक्ति के द्वारा भोजन किया गया पदार्थ से कम सार वस्तु ग्रहण किया जाता है जिससे वह अधिक शौच जाता है। कारण मन्दाग्नि से खाद्य वस्तु पूर्ण रूप से सार रूप से परिणमन नहीं होती है जिससे अधिक वस्तु मूल रूप से निष्कासन हो जाती है।

आप लोगों को अवगत हुआ होगा कि एक स्वस्थ व्यक्ति जब कालरा (हैजा), बदहजमी, अतिसार आदि रोगों से पीड़ित होता है तब वह पहले से अधिक शौच जाता है। इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि आरोग्य समय में खाद्य वस्तु अधिक रूप में रसादि रूप में परिणमन करती है परन्तु अस्वस्थ अवस्था में अधिक वस्तु मल रूप में परिणमन करके बाहर निकल जाती है।

जल सहित ईंधन से अधिक धुआँ निकलता है परन्तु शुष्क ईंधन से कम धुआँ निकलता है। लकड़ी से जिस प्रमाण से धुआँ निकलता है उससे बहुत कम जले हुए अंगार से निकलता है। कैरोसीन (मिट्टी का तेल) तेल के दीपक से अधिक धुआँ

निकलता है परन्तु घी के दीपक से कम धुआँ निकलता है। उपर्युक्त प्रत्येक अवस्था में अग्नि प्रज्ज्वलित होते हुए भी और ईंधन जलते हुए भी धुएँ का परिमाण कम-बेसी क्यों होता है ? इसका वैज्ञानिक कारण यह है कि जिस ईंधन में जलांश, कार्बन अधिक अंश में रहता है उसमें से अधिक धुआँ निकलता है जिसमें जलांश, कार्बन कम रहता है उसमें से धुआँ कम निकलता है। अग्नि तीव्र रूप से प्रज्ज्वलित होने से भी धुआँ कम निकलता है एवं अग्नि मन्द रूप से प्रज्ज्वलित होने से धुआँ अधिक निकलता है। इसी प्रकार महापुरुष लोग सारयुक्त कम भोजन करते थे एवं उनकी जठराग्नि तीव्र होने के कारण सम्पूर्ण खाद्य रसादि रूप में परिणमन हो जाता था। मल रूप में अवशेष नहीं होने के कारण वे आहार करते हुए नीहार नहीं करते थे।

राज्य शासन

समस्त तीर्थंकर क्षत्रिय राजकुल में उत्पन्न होने के कारण शैशव, बाल्यावस्था, कुमार अवस्था अत्यन्त सुख समृद्धि में व्यतीत होती है। युवावस्था में युवराज प्रवृत्ति को अलंकृत करते हैं। कुछ तीर्थङ्कर गृहस्थ जीवन-यापन करने के लिये वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं, कुछ तीर्थङ्कर उत्कृष्ट वैराग्य के कारण विवाह को संसार का सुदृढ़ बन्धन मानकर बाल ब्रह्मचारी अवस्था में ही दीक्षा धारण करते हैं। कुछ तीर्थङ्कर राजा बनते हैं, कुछ मण्डलीक, कुछ अर्द्ध माण्डलीक, कुछ चक्रवर्ती भी बनते हैं।

चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण जित्वा नृपः सर्व नरेन्द्र चक्रम्।

शान्तिनाथ तीर्थङ्कर गृहस्थ अवस्था में सुदर्शन चक्र को लेकर समस्त नरेन्द्र चक्र को (राजाओं के समूह को) जीत कर चक्रवर्ती हुए थे। राज्य शासन काल में भी गृहस्थ तीर्थङ्कर (भावी तीर्थङ्कर) न्याय नीति से प्रजापालन, दुष्ट-दमन सज्जनों का पालन करते थे। प्रजा को सन्तान के समान स्नेह, सौहार्द से शासन करते थे। तीर्थङ्कर राज्यकाल में किस प्रकार अनुशासन एवं प्रजापालन करते हैं, उसका वर्णन आदिनाथ तीर्थङ्कर के प्रकरण में किया जायेगा। पाठकगण वहाँ से देखें।

तप कल्याण (परिनिष्क्रमण कल्याणक)

जिस प्रकार कमल पङ्क में उत्पन्न होता है, पङ्क एवं जल से पोषण शक्ति प्राप्त करके वृद्धि को प्राप्त होता है तो भी कमल जल से तथा पङ्क से भिन्न अलिप्त रहता है उसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान राज परिवार में जन्म ग्रहण करते हैं, देवोपनीत भोगोपभोग को सेवन करते हैं। देव, दानव, मानव से सेवित होते हैं और स्वयं राज्य राजेश्वर चक्रवर्ती होते हुये भी विषय भोगों को विषवत् मानकर अनंत सुख शान्ति को प्राप्त करने के लिये प्राकृतिक यथाजात दिगम्बरी जिनेन्द्र मुद्रा को धारण करते हैं।

अरहनाथ तीर्थङ्कर, तीर्थङ्कर पदवी के साथ-साथ कामदेव एवं चक्रवर्तित्व को प्राप्त किये थे। तो भी जब अन्तरंग में ज्ञान वैराग्य रूपी सूर्य उदय हुआ तब उनके अज्ञान, मोह, आसक्ति, भोग, कांक्षा रूपी अन्धकार विलय हो गया। तब वे सम्पूर्ण वैभव को किस प्रकार हेय दृष्टि से त्याग किये, उसको उपमा-अलंकार से अलंकृत भाषा में महान् तार्किक, दार्शनिक, प्रज्ञाचक्षु समन्तभद्र स्वामी वृहत् स्वयंभूस्तोत्र में बताते हैं—

लक्ष्मी विभव सर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्र लाञ्छनम्।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाऽभवत् ॥ 88 ॥

वैराग्य सम्पन्न मुमुक्षु तीर्थङ्कर चक्रवर्ती अरहनाथ ने राज्यश्री, वैभव, सार्वभौम षड्खण्ड साम्राज्य को जीर्ण तृणवत् त्याग कर दिये।

जब अन्तरंग में वैराग्य उत्पन्न होता है तब पहले जो आकर्षणपूर्ण लगते थे, सदृश निस्सार, हेय, तत्जनीय प्रतिभासित होता है। एक कवि ने कहा है—

गो धन, गजधन, राजधन और रतन धन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरी समान ॥

जब संतोष, वैराग्य उत्पन्न होता है तब धन सम्पत्ति, वैभव आदि धूल के समान प्रतिभासित होता है। जब संतोष धन उत्पन्न नहीं होता है तब विपुल धन भी धूली के समान प्रतिभासित होता है। जैसे धूली इच्छा पूर्ति करने के लिये अपर्याप्त होता है उसी प्रकार असंतोषी व्यक्ति के लिये विपुल धन भी अपर्याप्त होता है। पूर्व संस्कार वशन वर्तमान भव में कुछ बाह्य वैराग्यपूर्ण निमित्त प्राप्त करके तीर्थङ्कर भगवान दीक्षा धारण करने के लिये लालायित हो उठते हैं तब लौकान्तिक देव उस उत्तम कार्य के लिए उत्साहित एवं अनुमोदना करने के लिये स्वर्ग से आकर तीर्थङ्कर भगवान को भक्ति विनय भाव से निवेदन करते हैं। हे! जगत्! उद्धारक विश्व पिता, विश्व के अनिमित्त बन्धु, दयामय भगवान्! आप जो मन से उत्कृष्ठ भावना किये हैं वह भावना प्रशंसनीय-अभिवंदनीय है, आप शीघ्रातिशीघ्र सांसारिक दृढ़ बन्धन को निर्ममत्व समता भाव से छेदन-भेदन करके स्वकल्याण के साथ-साथ विश्व कल्याण के लिये आदर्श अन्तरंग-बहिरंग ग्रंथियों से विमुक्त यथाजात दिगम्बर मुद्रा को धारण करके आत्म साधन के लिये तत्पर होइये।

नभोऽङ्गण मथा रुध्य तेऽयोध्यां परितः पुरीम्।
तस्थुः स्ववाहनानीका नाकिनाथा निकायशः ॥ 73 ॥

आदि पुराण। पर्व 17-पृ० 379

अथानन्तर समस्त इन्द्र अपने वाहनों और अपने-अपने देव निकाय (समूह) के साथ आकाश रूपी आँगन को व्याप्त करते हुये आये और अयोध्यापुरी के चारों ओर आकाश को घेरकर अपने-अपने निकाय के अनुसार ठहर गये।

ततोऽस्य परिनिष्क्रान्ति महाकल्याण संविधौ ।
महाभिषेकमिन्द्राद्याश्चक्रुः क्षीरार्णवाम्बुभिः ॥ 74 ॥

तदनन्तर इन्द्रादिक देवों ने भगवान् के निष्क्रमण अर्थात् तपः कल्याणक करने के लिये उनका क्षीर सागर के जल से महाभिषेक किया ।

अभिषिच्य विभुं देवा भूषयाञ्चक्रुराद्दताः ।
दिव्यैर्विभूषणैर्वस्त्रैर्माल्यैश्च मलयोद् भवैः ॥ 75 ॥

अभिषेक कर चुकने के बाद देवों ने बड़े आदर के साथ दिव्य आभूषण, वस्त्र, मालायें और मलयागिरि चन्दन से भगवान् का अलंकार किया ।

देव निमित्त सुदर्शन पालकी पर तीर्थङ्कर भगवान मुक्ति रूपी कन्या को इस प्रकार विराजमान हुए जिस प्रकार वर उन्तमोत्तम वस्त्र, आभूषणों से अलंकृत होकर पालकी में बैठकर इच्छित कन्या को वरण करने के लिये प्रयाण करता है ।

पदानि सप्ततामूहुः शिबिकां प्रथमं नृपाः ।
ततो विद्याधरा निन्युर्व्योम्नि सप्त पदान्तरम् ॥ 98 ॥

आदि पुराण ।पृ० 381

भगवान् की उस पालकी को प्रथम ही राजा लोग सात पैंड तक ले चले फिर विद्याधर लोग आकाश में सात पैंड तक ले चले ।

स्कन्धाधिरोपितां कृत्वा ततोऽमूमविलम्बितम् ।
सुरासुराः खमुत्पेतुरारुढ प्रमदोदयाः ॥99॥

तदनन्तर वैमानिक और भवनत्रिक देवों ने अत्यन्त हर्षित होकर वह पालकी अपने कन्धों पर रखी और शीघ्र ही उसे आकाश में ले गये ।

पर्याप्तमिदमेवास्य प्रभोर्माहात्म्य शंसनम् ।
यत्तदा त्रिदिवाधीशा जाता युग्यक वाहिनः ॥100॥

भगवान वृषभदेव के महात्म्य की प्रशंसा करना इतना ही पर्याप्त है कि उस समय देवों के अधिपति इन्द्र भी उनकी पालकी ले जाने वाले हुए थे अर्थात् इन्द्र स्वयं उनकी पालकी ढो रहे थे ।

तदा विचकरूः पुष्प वर्ष मामोदि गुह्यकाः ।
ववौ मन्दाकिनीसीकराहारः शिशिरो मरूत् ॥101॥

उस समय यक्ष जाति के देव सुगन्धित फूलों की वर्षा कर रहे थे और गंगा नदी के जलकणों को धारण करने वाला शीतल वायु बह रहा था ।

प्रस्थान मङ्गलान्युच्चैः संपेठुः सुरवन्दिनः ।
तदा प्रयाणभेर्यश्च विष्वगास्फालिताः सुरैः ॥102॥

उस समय देवों के बन्दीजन उच्च स्वर से प्रस्थान समय के मंगल पाठ पढ़ रहे थे और देव लोग चारों ओर प्रस्थान सूचक भेरियाँ बजा रहे थे ।

मोहारिविजयोद्योग समयोऽयं जगद् गुरोः ।
इत्युच्चैर्घोषयामासुस्तदा शक्राज्ञयाऽमराः ॥103॥

उस समय इन्द्र की आज्ञा पाकर समस्त देव जोर-जोर से घोषणा कर रहे थे कि जगद्गुरु भगवान् वृषभदेव का मोह रूपी शत्रु को जीतने के उद्योग करने का यही समय है ।

दीक्षा विधि

देवादि अत्यन्त उत्साहित होकर पालकी को लेकर दीक्षा स्थान में पहुँचते हैं। वहाँ जाकर भगवान् पालकी से उतरकर स्वच्छ स्थान में पूर्व या उत्तर दिक् की ओर मुख करके पर्याङ्कासन में विराजमान होते हैं ।

दीक्षापूर्व उपदेश

तत्र क्षणमि वासीनो यथास्वमनु शासनैः ।
विभुः समाजयामास सभां सनृसुरासुराम् ॥192॥

आदि पुराण सप्तदश पर्व

तदनन्तर भगवान ने क्षण भर उस शिला पर आसीन होकर मनुष्य, देव तथा धरणेन्द्रों से भरी हुई उस सभा को यथायोग्य उपदेशों के द्वारा सम्मानित किया । भगवान का छद्मस्थ अवस्था में अन्तिम सम्भाषण इस समय में ही होता है । इसके पश्चात् जब तक केवल ज्ञान रूपी अन्तरंग लक्ष्मी को प्राप्त नहीं करते हैं तब तक अखण्ड मौन साधना में तत्पर रहते हैं । उपदेश के उपरान्त बन्धु वर्गों से दीक्षा देने की आज्ञा माँगते हैं—

दीक्षा के लिये बन्धु वर्ग से अनुमति

भूयोऽपि भगवानुच्चैर्गिरा मन्द्रगभीरया ।
आपप्रच्छे जगद्बन्धुर्बन्धून्निः स्नेहबन्धनः ॥193॥

वे भगवान जगत् के बन्धु थे और स्नेहरूपी बन्धन से रहित थे । यद्यपि वे दीक्षा धारण करने के लिए अपने बन्धु वर्गों से एक बार पूछ चुके थे तथापि उस समय उन्होंने फिर भी ऊँची और गम्भीर वाणी द्वारा उनसे पूछा—दीक्षा लेने की आज्ञा प्राप्त की ।

तीर्थंकर एक आदर्श महान् पुरुष होने के कारण पिता-माता बन्धु वर्गों के प्रति आदर सम्मान प्रदर्शन करने के लिये एवं विश्व को नम्रता का पाठ पढ़ाने के लिए पहले आज्ञा प्राप्त करने पर भी पुनः दीक्षा के अवसर पर आज्ञा प्राप्त करते हैं ।

अन्तरंग—बहिरंग निर्ग्रन्थ दीक्षाः

मध्येयवनिकं स्थित्वा सुरेन्द्रे परिचारिणि ।
सर्वत्र समतां सम्यग्भावयन् शुभभावनः ॥195॥

व्युत्सृष्टान्तर्बहिः संगो नैस्संग्ये कृतसंगरः ।
वस्त्राभरणमाल्यानि व्यसृजन् मोहहानये ॥196॥

उन्होंने अन्तरंग और बहिरंग परिग्रह छोड़ दिया है और परिग्रह रहित रहने की प्रतिज्ञा की है, जो संसार की सब वस्तुओं में समता भाव का विचार कर रहे हैं और जो शुभ भावनाओं से रहित हैं ऐसे उन भगवान् वृषभदेव ने यवनिका के भीतर मोह को नष्ट करने के लिये वस्त्र, आभूषण तथा माला वगैरह का त्याग किया ।

केशलोंच—

दासीदासगवाश्वादि यत्किंचन सचेतनम् ।
मणि मुक्ता प्रवालादि यच्च द्रव्यमचेतनम् ॥ 198 ॥
तत्सर्वंविभुर त्याक्षीन्निर्व्यपेक्षं त्रिसाक्षिकम् ।
निष्परिग्रहता मुख्यामास्थाय व्रतभावनाम् ॥ 199 ॥

जिसमें निष्परिग्रहता की ही मुख्यता है, ऐसी व्रतों की भावना धारण कर, भगवान वृषभदेव ने दासी, दास, गौ, बैल आदि जितना कुछ चेतन परिग्रह था और मणि, मुक्ता, मूंगा आदि जो कुछ अचेतन द्रव्य था उस सबका अपेक्षा रहित होकर अपनी देवों की और सिद्धों की साक्षी पूर्वक परित्याग कर दिया ।

ततः पूर्वं मुखं स्थित्वा कृत सिद्धनमस्क्रियः ।
केशानलुञ्चदाबद्ध पल्यङ्कः पञ्चमुष्टिकम् ॥ 200 ॥

तदनन्तर भगवान पूर्व दिशा की ओर मुंह करके पद्मासन से विराजमान हुए और सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार कर उन्होंने पंचमुष्टियों में केशलोंच किया ।

निर्लुच्य बहुमोहाग्र वल्लरीः केश वल्लरीः ।
जातरूप धरो धीरो जैनीं दीक्षामुपाददे ॥ 201 ॥

धीर, वीर भगवान् वृषभदेव ने मोहनीय कर्म की मुख्य लताओं के समान बहुत-सी केशरूपी लताओं का लोंच कर दिगम्बर रूप के धारक होते हुए जिन दीक्षा धारण की ।

कृत्सनाद् विरभ्य सावद्याच्छ्रितः सामायिकं यमम् ।
व्रतगुप्ति समित्यादीन् तद्भेदानां ददे विभुः ॥ 202 ॥

भगवान ने समस्त पापारम्भ से विरक्त होकर सामायिक चारित्र धारण किया तथा व्रत गुप्ति, समिति, आदि चारित्र के भेद ग्रहण किए ।

केशों का क्षीरसागर में विसर्जन—

केशान् भगवतो मूर्ध्नि चिरवासात्पवित्रितान् ।
प्रत्यैच्छन्माघवा रत्नपटल्यां प्रीत मानसः ॥ 204 ॥

भगवान के मस्तक पर चिरकाल तक निवास करने से पवित्र हुए केशों को इन्द्र ने प्रसन्नचित होकर रत्नों के पिटारे में रख लिया था ।

सितांशुकप्रतिच्छन्ने पृथौ रत्नसमुद्गके ।
स्थिता रेजुर्विभोः केशा यथेन्दोर्लक्ष्मलेशकाः ॥ 205 ॥

सफेद वस्त्र से परिवृत उस बड़े भारी रत्नों के पिटारे में रखे हुए भगवान के काले केश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो चन्द्रमा के काले चिन्ह के अंश ही हों।

विभूत्तमाङ्गसंस्पर्शादिमे मूर्धन्यतामिताः ।
स्थाप्याः समुचिते देशे कस्मिंश्चिदनुपद्रुते ।। 206 ।।

'ये केश भगवान के मस्तक के स्पर्श से अत्यन्त श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त हुए हैं, इसलिए उन्हें उपद्रव रहित किसी योग्य स्थान में स्थापित करना चाहिए। पाँचवाँ क्षीरसमुद्र स्वभाव से ही पवित्र है' इसलिए उनकी भेंट कर उसी के पवित्र जल में इन्हें स्थापित करना चाहिए। ये केश धन्य हैं जो कि जगत् के स्वामी भगवान् वृषभदेव के मस्तक पर अधिष्ठित हुए थे तथा यह क्षीरसमुद्र भी धन्य है, जो इन केशों को भेंटस्वरूप प्राप्त करेगा, ऐसा सोचकर इन्द्रों ने उन केशों को आदर सहित उठाया और बड़ी विभूति के साथ ले जाकर उन्हें क्षीरसमुद्र में डाल दिया।

केवल बोध प्राप्त के लिए कठोर आध्यात्मिक साधन—

तीर्थङ्कर भगवान जब अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रहों को परित्याग करके निर्मम, निरंहकार, अनाशक्त भाव से अन्तरंग, बहिरंग आत्मसाधन में लीन हो जाते हैं। समन्तभद्र स्वामी ने तीर्थकरों के साधक जीवन बिताते हुए कहते हैं कि—

बाह्यं तपः परमदुश्चरमाऽऽचरस्त्व—
माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम् ।
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरेऽस्मिन्
ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ।। 83 ।।

(वृहत् स्वयंभू स्तोत्र)

तीर्थंकर भगवान उपवास आदि बाह्य 6 तपश्चरण अन्तरंग विनयादि 6 तपश्चरण की वृद्धि के लिए आचरण करते हैं। ध्यानरूपी आध्यात्मिक प्रखर अग्नि से अन्तरंग एवं बहिरंग कलमष को नष्ट करके अतिशयता को प्राप्त करते हैं। तीर्थंकर भगवान संसार के कारणभूत आर्त्त एवं रौद्र को त्याग करके धर्म एवं शुक्ल ध्यानरूपी ध्यान में संतत् लीन रहते हैं क्योंकि धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान आत्मोन्नति के लिए अत्यन्त समर्थ कारण हैं। जिस प्रकार अशुद्ध स्वर्ण-पाषाण को शुद्ध बनाने के लिए प्रखर अग्नि में बार-बार भावित किया जाता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान अनादि परम्परा से संचित कर्म मल को विनष्ट करने के लिए अभिरत धर्म एवं शुक्ल-ध्यानरूपी अग्नि से स्वयं की आत्मा को भावित करते हैं।

दीक्षोपरान्त बोधि प्राप्त तक अथवा केवल ज्ञान प्राप्ति तक अखण्ड मौन साधना से आत्म विशुद्धि के लिए तत्पर रहते हैं। प्राचीन विश्व इतिहास स्वरूप आदिपुराण में भगवन् जिनसेन स्वामी तीर्थंकर के आध्यात्मिक वैभव बताते हुए कहते हैं कि—

महामुनिर्महामौनी महाध्यानो महादमः ।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥ 1 ॥

आदिपुराण (सहस्रनाम) अ० 25

आध्यात्मिक सम्राट तीर्थंकर भगवान यथार्थ में महामुनि, महामौनी, महाध्यानी, महादम, महाक्षम, महाशील, महायज्ञ एवं महामख होते हैं।

तीर्थंकरों की आहार चर्या एवं दान तीर्थ—

दीक्षोपरान्त तीर्थंकर मुनि कुछ निश्चित दिन तक अनशन व्रत को धारण करके तपश्चरण करते हैं। मार्ग-प्रवर्तन के लिए, आदर्श स्थापन के लिए, दानतीर्थ के प्रवर्तन के लिए तीर्थंकर भगवान दीक्षोपवास के अनन्तर आहारचर्या के लिये प्रयाण करते हैं। जो उत्तम धर्मात्मा श्रावक नवधा भक्ति से अनुरंजित होकर एवं सप्त गुण मंडित होकर प्रासुक आहार देते हैं, उन्हीं के घर पर तीर्थंकर भगवान प्रथम आहार ग्रहण करते हैं; तब विश्व को आश्चर्यचकित करने वाला पंचाश्चर्य होता है।

पंचाश्चर्य—

रत्नवृष्टि—आहारदाता के घर पर अधिक से अधिक साढ़े बारह करोड़ पचास लाख (125000000) रत्न की वृष्टि होती है और कम से कम एक लाख पच्चीस हजार (125000) रत्नों की वृष्टि होती है।

मन्द, सुगन्ध तथा शीतल बयार बहने लगती है।

दिव्य पुष्पों की वृष्टि होती है।

जय-जय शब्दों का घोषण होता है।

देव-दुन्दुभी की मधुर ध्वनि होती है।

आहारदाता का महत्त्व—

तपस्थिताश्च ते केचित्सिद्धास्तेनैव जन्मना ।
जिनांते सिद्धिरन्येषां तृतीये जन्मनि स्मृताः ॥ 60–252 ॥

(हरिवंश पुराण)

तीर्थंकर भगवान को प्रथम बार जो आहार दान देता है वह तद्भव में मोक्ष को प्राप्त करता है या स्वर्ग-सुख को अनुभव करके तीसरे भव में मोक्ष को प्राप्त करता है। तीर्थंकर को प्रथम बार दान देने वाला पूर्व भव से धार्मिक भाव एवं दानादि क्रिया से संस्कारित रहता है। पूर्वोपार्जित पुण्य-कर्म एवं संस्कार से प्रेरित होकर धर्म-तीर्थ के प्रवर्त्तक तीर्थंकर भगवान को जब भावोज्ज्वल सहित आहार दान देता है तब वह दान-तीर्थ का प्रवर्तन करता है। तीर्थंकर भगवान धर्मतीर्थ का प्रवर्तक है तो प्रथम दान देने वाला दान तीर्थ का प्रवर्तक है। भावोज्ज्वलता से एवं पुण्य के प्रभाव से दानकर्त्ता तद्भव में दीक्षा ग्रहण करके, सिद्ध, बुद्ध, नित्य, निरंजन, परमात्मा बन सकता है या पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग के अभ्युदय सुख को प्राप्त करके तीसरे भव में मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

केवल ज्ञान कल्याणक (केवल बोध-लाभ)—

कठोर आत्म साधन से जब आत्म शुद्धि की वृद्धि होते-होते शुक्ल ध्यान निर्मल धूम्ररहित प्रखर अग्नि समान शुक्ल ध्यान अन्तरंग में प्रज्ज्वलित हो उठता है तब आत्म विशुद्धि के आध्यात्मिक सोपान स्वरूप क्षपक श्रेणी आरोहण करते-करते जब अन्तरङ्ग मलस्वरूप ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय एवं अन्तराय कर्मों को भस्म कर डालते हैं तब आत्म विशुद्धि एवं उत्थान गुण स्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्त वीर्य को प्राप्त करके पूर्ण तीर्थंकर अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। इस अवस्था को जैनागम में तेरहवाँ गुण-स्थान संयोग केवली, जीवन-मुक्त, परमात्मा, अर्हत आदि नाम से अभिहित हुआ है। बौद्ध धर्म में इस अवस्था को बोधिसत्व, बुद्धत्व, अर्हत तीर्थंकर आदि कहते हैं। हिन्दू धर्म में जीवन-मुक्त, परमात्मा, सशरीर परमात्मा आदि नाम से पुकारते हैं।

अर्हत अवस्था में पृथ्वी से 5000 धनुष अधर में रहना—

जादे केवलणाणे परमोरालं जिणाण सव्वाणं।
गच्छदि उवरिं चावा पंचसहस्साणि वसुहादो ॥ 705 ॥

(तिलोय पण्णति)—द्वि० भा० पृ० 201

केवल ज्ञान के उत्पन्न होने पर समस्त तीर्थंकरों का परमौदारिक शरीर पृथ्वी से 5000 धनुष प्रमाण पृथ्वी तल से ऊपर चला जाता है।

यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि केवल ज्ञान के अनन्तर तीर्थंकर के शरीर 5000 धनुष (20,000 हाथ) ऊपर स्वयमेव किस कारण से चला जाता है?

संसारी जीव तीन प्रकार कर्म के समुदाय स्वरूप हैं—

(1) द्रव्य कर्म, (2) नोकर्म, (3) भावकर्म। ज्ञानावरणादि 8 कर्म द्रव्य कर्म हैं।

(1) औदारिक, (2) वैक्रियक, (3) आहारक, (4) तैजस, (5) कार्माण शरीर नोकर्म स्वरूप हैं। राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि भाव कर्म हैं।

कर्म पुद्गल से निर्मित है। पुद्गल में गुरुत्व नाम का एक गुण है अर्थात् पुद्गल में भारीपन है। कर्म पुन: दो भाग से विभाजित है—(1) पुण्य स्वरूप (2) पाप स्वरूप। पाप कर्म अशुद्ध विचारधारा से जीव के साथ संश्लेष बंध होने के कारण पाप कर्म वजनदार है। पुण्य कर्म विशुद्धि भाव से जीव के साथ संश्लेष बंध होने के कारण हल्का है। जब तीर्थंकर भगवान ध्यानाग्नि से पाप कर्म स्वरूप ज्ञानावरणादि स्वरूप 4 घाति कर्म को भस्म कर डालते हैं तब अनन्तानन्त परमाणु के पिण्ड स्वरूप पाप कर्म शरीर से पृथक् हो जाते हैं। वजनदार अनन्तानन्त पाप परमाणुओं का शरीर से पृथक्करण होने के कारण तीर्थंकर का शरीर पूर्वापेक्षा कम वजनी हो जाता है जिससे शरीर पृथ्वी से 5000 धनुष स्वयमेव ऊपर उठ जाता है। जिस प्रकार हाइड्रोजन गैस से भरित बैलून को छोड़ देने से वह बैलून स्वयमेव

ऊपर उठ जाता है । केवल ज्ञान के बाद पुनः पापकर्म का बंध नहीं होता है उसके कारण पुनः कभी भी अर्हन्त भगवान (तीर्थङ्कर) भू पृष्ठ पर नहीं आते हैं ।

केवल ज्ञान के अतिशय—

जोयणसदमज्जादं सुभिक्खदा चउदिसासु णियठाणा ।
णहयलगमणा मंहिसा भोयणउवसग्गपरिहीणा ।। 908 ।।

ति. प.–भाग–2–पृ. 278

सव्वाहिमुहट्ठियत्तं अच्छायत्तं अपम्हफंदित्तं ।
विज्जाणं ईसत्तं समणहरोमत्तणं सरीरम्मि ।।909।।

अट्ठरसमहाभासा खुल्लयभासा सयाइ सत्त तहा ।
अक्खर अणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सयलभासाओ ।।910।।

एदासिं भासाणं तालुवदंतोट्ठ कंठवावारे ।
परिहरिय एक्क कालं भव्वजणे दिव्वभासित्तं ।।911।।

पगदीए अक्खलिदो संझत्तिदयम्मि णवमुहुत्ताणि ।
णिस्सरदि णिरूवमाणो दिव्वझुणी जाव जोयणयं ।।912।।

अवसेस काल समए गणहरेदेविंदचक्कवट्टीणं ।
पण्हाणुरूवमत्थं दिव्वझुणी सत्तभंगीहिं ।।913।।

छद्दव्वणवपयत्थे पंचट्ठीकायसत्ततच्चाणि ।
णाणाविहहेदूहिं दिव्वझुणी भणइ भव्वाणं ।।914।।

धादिक्खएण जादा एक्कारस अदिसया महच्छरिया ।
एदे तित्थयराणं केवलणाणम्मि उप्पण्णे ।।915।।

अपने पाप से चारों दिशाओं में एक सौ योजन तक सुभिक्षता, आकाश गमन, हिंसा का अभाव, भोजन का अभाव, उपसर्ग का अभाव, सब की ओर मुख करके स्थित होना, छाया रहितता, निर्निमेष दृष्टि, विद्याओं की ईशता, संजीव होते हुये भी नख और रोमों का सामान होना, अठारह महाभाषा, सात सौ क्षुद्रभाषा तथा और भी जो संज्ञी जीवों की समस्त अक्षर अनक्षरात्मक भाषायें हैं उनमें तालु, दाँत ओष्ठ और कण्ठ के व्यापार से रहित होकर एक ही समय भव्यजनों को दिव्य उपदेश देना । भगवान जिनेन्द्र की स्वभावतः अस्खलित और अनुपम दिव्य ध्वनि तीनों संध्याकालो में नव मुहूर्त्तों तक निकलती है और ? योजन पर्यन्त जाती है । इसके अतिरिक्त गण धर देव इन्द्र अथवा चक्रवर्ती के प्रश्नानुरूप अर्थ के निरुपणार्थ वह दिव्य ध्वनि शेष समयों में भी निकलती है । वह दिव्य-ध्वनि भव्य जीवों को छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्त्वों का नाना प्रकार के हेतुओं द्वारा निरुपण करती है । इस प्रकार घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए ये महान् आश्चर्यजनक ग्यारह अतिशय तीर्थंकरों को केवल ज्ञान के उत्पन्न होने पर प्रगट होते हैं ।।908–915।।

योजन शत इक में सुभिख, गगन-गमन मुख चार ।
नहिं अदया उपसर्ग नहीं, नाहीं कवलाहार ।।

सब विद्या ईश्वरपनो, नाहि बढ़े नख-केश ।
अनिमिष दृग छाया रहित दश केवल के वेष ।।

गव्यूति शतचतुष्टय सुभिक्षता गगन गमनमप्राणि वधः ।
भुक्त्युपसर्गाभावाश्चतुरास्यत्वं च सर्वविद्येश्वरता ।।40।।

अच्छायत्वमपक्ष्मस्पंदश्च सम प्रसिद्धनखकेशत्वं ।
स्वतिशय गुणा भगवतो घातिक्षयजा भवन्ति तेऽपि दशैव ।।41।।

नंदीश्वर भक्ति

(1) 400 कोश भूमि में सुभिक्षता—

जिस प्रकार सूर्य उदय होने पर सूर्य के प्रभाव से प्रभावित होकर अनेक क्षेत्र प्रकाशित हो जाता है, कमल खिलने लगते हैं, उसी प्रकार केवल ज्ञान होने के पश्चात् तीर्थंकर भगवान जिस क्षेत्र में रहते हैं उनको केन्द्रित करके 400 कोश अर्थात् 800 मील क्षेत्रफल प्रमाण भूमि में सुभिक्ष हो जाता है। तीर्थंकर भगवान दया, करुणा, विश्वप्रेम की साक्षात् मूर्ति होते हैं। दयादि भावों से तीर्थंकर के समीपवर्त्ती क्षेत्र तथा परिसर भी प्रवाहित हो जाता है उसके कारण सब जीव सुखी, सन्तुष्ट, धन-धान्य सम्पन्न, तथा निरोगी होते हैं। प्रकृति प्रभावित होने के कारण योग्य काल में उत्तम वृष्टि होती है जिससे वनस्पतियाँ पल्लवित होकर यथेष्ट फल-पुष्प देते हैं। जिससे पृथ्वी धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाती है। जिस प्रकार समुद्र तट में सम-शीतोष्ण जलवायु रहती है हिमालय के कारण हिमालय पर्वत निकटस्थ क्षेत्र शीतल होता है उसी प्रकार धर्मात्मा जीवों के कारण निकटस्थ क्षेत्र भी पवित्र अहिंसामय सुभिक्ष हो जाता है। पारीशीष न्यायानुसार दुष्ट, दुर्जन, पापी जीवों के कारण निकटस्थ क्षेत्र का परिसर भी दूषित दुर्भिक्ष पीड़ित हो जाता है।

(2) गगन-गमन—

पूर्व में वर्णन किया गया है कि केवल ज्ञान होने के पश्चात् भगवान् भूपृष्ट से 5000 धनुष ऊपर चले जाते हैं। पुण्य कर्म के प्रभाव से एवं उत्कृष्ट योग (ध्यान) शक्ति से भगवान आकाश में ही बिना किसी के अवलम्बन के आकाश में गगन-गमन करते हैं। पूर्व में वर्णन किया गया है कि एक सामान्य योगी चारण ऋद्धि मुनि, आकाशगामी विद्याधारी भी यदि आकाश में गमन करते हैं तो इसमें क्या आश्चर्य है।

(3) अप्राणिबध (अहिंसा)—

"अहिंसा प्रधानात् तत्सन्निधौ वैरीत्याग:" जो अहिंसा को पूर्ण रूप से अपने जीवन में उतार लेते हैं उनके सानिध्य को प्राप्त करके हिंसात्मक जीव भी हिंसा भाव का त्याग कर देते हैं। तीर्थंकर भगवान पूर्ण अहिंसा, दया, करुणा की जीवन्त मूर्ति स्वरूप होते हैं। इसीलिये उनके चरण-समीप में आने वाले क्रूर से क्रूर जीव भी अपनी क्रूरता छोड़कर अहिंसा धारा से प्लावित होकर स्वयं अहिंसामय

बन जाते हैं। इसलिये उनके समवशरण में जन्म-जात परस्पर क्रूर सिंह, गाय, बिल्ली, चूहा, मोर, सर्प आदि एक साथ मित्रभाव से बैठकर भगवान दिव्य संदेश सुनते हैं।

(4) कवलाहार अभाव—

केवली भगवान के कवलाहार (ग्रास रूप आहार) का अभाव पाया जाता है। उनकी आत्मा का इतना विकास हो चुका है कि स्थूल भोजन द्वारा उसके दृश्यमान देह का संरक्षण अनावश्यक हो गया है। अब शरीर रक्षण के निमित बल प्रदान करने वाले सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं का आगमन बिना प्रयत्न के हुआ करता है।

(5) उपसर्गाभाव—

भगवान के घातिया कर्मों का क्षय होने से उपसर्ग का बीज बनाने वाला असातावेदनीय कर्म शक्ति शून्य बन जाता है। इसलिये केवल ज्ञान की अवस्था में भगवान पर किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं होता। यह ध्यान देने योग्य बात है, कि जब प्रभु की शरण में आने वाला जीव यम के प्रचण्ड प्रहार से बच जाता है, तब उन जिनेन्द्र पर दुष्ट व्यन्तर, क्रूर मनुष्य अथवा हिंसक पशुओं द्वारा संकट का पहाड़ पटका जाना नितान्त असम्भव है, जो लोग भगवान पर उपसर्ग होना मानते हैं वे वस्तुत: उनके केवल ज्ञानी होने की अलौकिकता को बिल्कुल भुला देते हैं।

(6) चतुर्मुख—

(चारों तरफ प्रभु के मुख का दर्शन होना)—

समवशरण में भगवान का मुख पूर्व या उत्तर दिशा की ओर रहता है किन्तु उनके चारों ओर बैठने वाले 12 सभाओं के जीवों को ऐसा भान (दिखता) होता है कि भगवान के मुख चारों दिशाओं में ही हैं। अन्य सम्प्रदाय में जो ब्रह्मदेव को चतुरानन कहने की पौराणिक मान्यता है उसका वास्तव में मूल बीज परम ब्रह्म रूप सर्वज्ञ जिनेन्द्र के आत्मतेज के द्वारा समवशरण में चारों दिशाओं में पृथक्-पृथक् रूप से प्रभु के मुख का दर्शन होता है।

(7) सर्व विद्येश्वरता—

केवलज्ञानावरण कर्म का सम्पूर्ण क्षय होने से भगवान सर्व विद्या के ईश्वर हो जाते हैं क्योंकि वे सर्व पदार्थों को ग्रहण करने वाली कैवल्य ज्योति से समालंकृत हैं। द्वादशांग रूप विद्या को आचार्य प्रभा चन्द्र ने सर्व विद्या शब्द के द्वारा ग्रहण किया है। उस विद्या के मूल जनक ये जिनराज प्रसिद्ध हैं।

"सर्वविद्येश्वरता सर्वविद्या द्वादशांग-चतुर्दश पूर्वाणि तासांस्वामित्वं।
यदि वा सर्व विद्या केवलज्ञानं तस्या ईश्वरता स्वामिता ॥"

क्रिया-कलाप, पृष्ठ 247, नंदीश्वर भक्ति

(8) अच्छायत्व—

(शरीर की छाया नहीं पड़ना)

जिस प्रकार पत्थर, बालू आदि से उसकी प्रतिबिम्ब छाया रूप पड़ती है। किन्तु पत्थर, बालू का रिफाइड किया जाता है अर्थात् काँच रूप या स्फटिक रूप होने के पश्चात् उसमें प्रतिबिम्ब रूप छाया नहीं पड़ती। उसी प्रकार औदारिक शरीर सहित जीव कल मस (पाप) से सहित होने पर औदारिक शरीर की प्रतिबिम्ब रूप छाया पड़ती है किन्तु भगवान कर्म से रहित होने अर्थात् कलमस से रहित हो जाने से जिस प्रकार काँच का प्रतिबिम्ब रूप छाया नहीं पड़ती है उसी प्रकार परमौदारिक शरीर से भी प्रतिबिम्ब रूप छाया नहीं पड़ती है। श्रेष्ठ तपश्चर्या रूप अग्नि में भगवान का शरीर तप्त हो चुका है। केवली बनने पर उनका शरीर निगोदियाँ जीवों से रहित हो गया है। वह स्फटिक सदृश बन गया है, मानो शरीर भी आत्मा की निर्मलता का अनुकरण कर रहा है। इससे भगवान के शरीर की छाया नहीं पड़ती है। राजवर्त्तिका में प्रकाश को आवरण करने वाली छाया है 'छाया प्रकाशा-वरणनिमित्ता' (पृ० 194) यह लिखा है। भगवान का शरीर प्रकाश का आवरण न कर स्वयं प्रकाश प्रदान करता है। सामान्य मानव का शरीर नहीं है। जिस शरीर के भीतर सर्वत्र सूर्य विद्यमान है वह शरीर तो प्राची (पूर्व) दिशा के समान प्रभात में स्वयं प्रकाश परिपूर्ण दिखेगा। इस कारण भगवान के शरीर की छाया न पड़ना, उनके कर्मों की छाया से विमुक्त निर्मल आत्मा के पूर्णतया अनुकूल प्रतीत होता है।

(9) अपक्ष्मस्पन्दत्व—

(अपलक नयन)

शरीर में शक्ति हीनता के कारण नेत्र पदार्थों को देखते हुए क्षण भर विश्रामार्थ पलक बन्द कर लिया करते हैं। अब वीर्यान्तराय कर्म का पूर्ण क्षय हो जाने से ये जिनेन्द्र अनन्तवीर्य के स्वामी बन गये हैं, इस कारण इनके पलकों में निर्बलता के कारण होने वाला बन्द होना, खोलना रूप कार्य नहीं पाया जाता है। दर्शनावरण कर्म का क्षय हो जाने से निद्रादि विकारों का अभाव हो गया है। अतः सरागी सम्प्रदाय के आराध्य देवों के समान इन जिनदेव को निद्रा लेने के लिए भी नेत्रों के पलकों को बन्द करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। स्वामी समन्तभद्र ने कहा है कि 'जगत के जीव अपनी जीविका काम, सुख तथा तृष्णा के वशीभूत हो दिन भर परिश्रम से थककर रात्रि को नींद लेते हैं, किन्तु जिनेन्द्र भगवान सदा प्रमाद रहित होकर विशुद्ध आत्मा के क्षेत्र में जागृत रहते हैं। इस कथन के प्रकाश में भगवान के नेत्रों के पलकों का न लगना उनकी श्रेष्ठ स्थिति के प्रतिकूल नहीं है।

(10) सम प्रमाण नख केशत्व—

(नख और केशों का नहीं बढ़ना)

भगवान के नख और केश वृद्धि तथा ह्रास शून्य होकर समान रूप में ही

रहते हैं। प्रभाचन्द्राचार्य ने टीका में लिखा है समत्वेन वृद्धि ह्रासतीनतया प्रसिद्धा नखाश्च केशाश्च यस्य देहस्य तस्य भावस्तत्वं (पृ० 257) भगवान का शरीर जन्म से ही असाधारणता का पुंज रहा है। आहार करते हुए भी उनके निहार का अभाव था। केवली होने पर कवलाहार रूप स्थूल भोजन ग्रहण करना बन्द हो गया। अब उनके परम पुण्यमय देह में ऐसे परमाणु नहीं पाए जाते हैं जो नख और केशरूप अवस्था को प्राप्त करें। शरीर में मलरूपता धारण करने वाले परमाणुओं का अब आगमन ही नहीं होता है। इस कारण नख और केश न बढ़ते हैं और न घटते ही हैं।

(11) दिव्य ध्वनि—

पूर्व भव में पवित्र विश्वमैत्री, विश्व प्रेम, विश्व उद्धारक, सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय भावनाओं से प्रेरित होकर 16 भावनाओं को भाते हुए केवली श्रुत केवली के पवित्र पदमूल में विश्व को क्षुभित करने वाला तीर्थङ्कर पुण्य प्रकृति को जो बीजरूप से संचय किये थे वही पुण्य कर्मरूपी बीज शनैः शनैः उत्कृष्ट योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूपी परिसर को प्राप्त करके 13वें गुणस्थान में 'पूर्ण' रूप से पुष्ट वृक्ष रूप में परिणमन करके अमित फल देने के लिये समर्थ हो जाता है। दिव्य ध्वनि उन फलों में से सर्वोत्कृष्ट फल है। इस दिव्य ध्वनि की महिमा अचिंत्य, अनुपम, अलौकिक, स्वर्ग-मोक्ष को देने वाली है। दिव्य ध्वनि का सूक्ष्म वैज्ञानिक, भाषात्मक, शब्दात्मक, उच्चारणात्मक, ध्वन्यात्मक विश्लेषण जैन आगम में पाया जाता है। दिव्य ध्वनि के अध्ययन से शब्द विज्ञान, भाषा विज्ञान, ध्वनि आदि का सूक्ष्म सर्वांगीण अध्ययन हो जाता है। दिव्य ध्वनि को 'ॐ कार' ध्वनि भी कहते हैं। दिव्य ध्वनि को विद्या अधिष्ठात्री देवी सरस्वती भी कहते हैं दिव्य ध्वनि को चतुर्वेद, द्वादशांग, श्रुत, आगम आदि नाम से अविधेय करते हैं। । जैनागम में जिस प्रकार दिव्य ध्वनि का वर्णन है उस प्रकार वर्णन अभी तक देश-विदेश के अन्यान्य दर्शन धर्म, सम्प्रदाय, भाषा विज्ञान, शब्द विज्ञान, व्याकरण, मनोविज्ञान, आधुनिक सम्पूर्ण विज्ञान विभाग में मेरे को देखने में नहीं आया है। दिव्य ध्वनि का कुछ सविस्तार वर्णन प्राचीन आचार्यों के अनुसार निम्नलिखित उद्धृत कर रहे हैं।

जोयण पमाण संठिद तिरियामरमणुव णिवह पडिबोहो।
मिदु महुर गभीर तरा यिसद यिसय सयल भासाहिं ॥60॥
अट्ठरस महाभासा खुल्लय भासा यि सत्तसय संखा।
अक्खर अणक्खरप्पय सण्णीजीवाण सयल भासाओ ॥61॥
एदासिं भासाणं तालुववंतोट्ठ कंठ वावारं।
परिहरिय एक्क कालं भव्वजणाणंदकर भासो ॥62॥

(तिलोयपण्णति । पठम अधिकार) पृ० 14

दिव्य ध्वनि मृदु, मधुर, अति गम्भीर और विषय को विशद करने वाली भाषाओं से एक योजन प्रमाण समवसरण सभा में स्थित तिर्यञ्च, देव और मनुष्यों के समूह को प्रतिबोधित करने वाले हैं, संज्ञी जीवों की अक्षर और अनक्षर रूप 18 महाभाषा तथा 700 छोटी (लघु) भाषाओं में परिणत हुई और तालु, दन्त, ओष्ठ

तथा कण्ठ से हलन-चलन रूप व्यापार से रहित होकर एक ही समय में भव्य जनों को आनन्द करने वाली भाषा दिव्य ध्वनि है ।

केरिसा सा दिव्यज्झुणि सव्वभासासरुवा अक्खराणक्खरप्पिया अणंतत्थ गब्भबीज पदघडिय सरीर तिसंज्झविसय छग्घडियासु णिरंतरं पयट्ठमाणिया इयर-कालेसु संसय विवज्जासाणज्झव साय भावगय गणह देवं पडिवट्टमाण सहावा संकर वदिगरा भावादो विसद सरुवा रारुण बीस धम्म कहा कहण सहवा"

जo धo पुo, पृo 115

प्रश्न 1—वह दिव्य ध्वनि कैसी होती है अर्थात् उसका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—वह सर्वभाषामयी है, अक्षर-अनक्षरात्मक है, जिसमें अनन्त पदार्थ समाविष्ट हैं अर्थात् जो अनन्त पदार्थों का वर्णन करती है, ऐसे बीज पदों से जिसका शरीर घड़ा गया है, जो प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल इन तीन संन्ध्याओं में छह-छह घड़ी (पावणे तीन घण्टे) तक निरन्तर खिरती है और उक्त समय को छोड़कर इतर समय में गणधर देव के संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय भाव को प्राप्त होने पर उनके प्रति प्रवृत्ति करना अर्थात् उनके संशयादिक को दूर करना जिसका स्वभाव है, संकर और व्यतिकर दोषों से रहित होने के कारण जिसका स्वरूप विशद है और उन्नीस अध्ययनों के द्वारा धर्म कथाओं का प्रतिपादन करना जिसका स्वभाव है, इस प्रकार के स्वभाव वाली दिव्य ध्वनि समझना चाहिये ।

गंभीरं मधुरं मनोहरतरं दोषव्यपेतं हितं ।
कंठौष्ठादि वचोनिमित्त रहितं नो वातारोधोद्गतम् ।।
स्पष्टं तत्तदभीष्ट वस्तु कथकं निःशेष भाषात्मकं ।।
दूरासन्नसमं निरूपमं जैनं वचः वातु वः ।।95।।

(आचार सारः—पृo 89)

अन्वयार्थ—(गंभीरं) गंभीर (मधुरं) कर्ण प्रिय (मनोहरतरम्) मनोहरतर (दोष व्ययेतं) दोष रहित (हितं) हितकारी (कंठौष्ठादिवचो निमित्त रहितं) कण्ठ और तालु आदि वचन के निमित्त से रहित (नोवातरोधोद्गतम्) वातरोधजनित नहीं है (स्पष्टम्) स्पष्ट है (तत्तदभीष्ट वस्तु कथकं) उस-उस अभीष्ट वस्तु का कहने वाला है (निःशेष भाषात्मकं) निःशेष भाषात्मक है । (दूरासन्नसमं) एक योजनान्तर में स्थित दूर और निकट को समान श्रवण गोचर होने वाले (निरूपमम्) उपमातीत (जैनं) जिनेन्द्र भगवान के (वचनं) स्वरनाम कर्म वर्गणा जनित वचन (वः) तुम्हारी (पातु) रक्षा करें ।

वह जिनेन्द्र का वचन जो गंभीर है, मधुर है, अतिमनमोहक है, हितकारी है, कंठ-ओष्ठ आदि वचन के कारणों से रहित है, पवन के रोकने से प्रकट है, स्पष्ट है, परम उपकारी पदार्थों का कहने वाला है, सर्वभाषामयी है, दूर व निकट में समान सुनाई देता है, वह उपमा रहित है सो वह श्रुत हमारी रक्षा करें ।

दिव्य ध्वनि का एकानेक रूप

एक तयोऽपि च सर्वं नृभाषाः सोऽन्तरनेष्ट बहूश्च कुभाषाः ।
अप्रतिपत्तिमपास्य च तत्त्वं बोधयति स्म जिनस्य महिम्ना ।।70।।

आदि पुराण । पर्व 23—पृo 549

यद्यपि वह दिव्य ध्वनि एक प्रकार की थी तथापि भगवान के महात्म्य से समस्त मनुष्यों की भाषाओं और अनेक कुभाषाओं को अपने अन्तर्भूत कर रही थी अर्थात् सर्वभाषा रूप परिणमन कर रही थी और लोगों का अज्ञान दूर कर उन्हें तत्त्वों का बोध करा रही थी।

एक तयोऽपि तथैव जलौघश्चित्ररसो भवति द्रुमभेदात् ।
पात्र विशेष वशाच्च तथायं सर्व विदो ध्वनिराप बहुत्वम् ।।71।।

जिस प्रकार एक ही प्रकार का जल का प्रवाह वृक्षों के भेद से अनेक रस-वाला हो जाता है उसी प्रकार सर्वज्ञ देव की वह दिव्यध्वनि भी पात्रों के भेद से अनेक प्रकार की हो जाती है।

एक तयोऽपि यथा स्फटिकाश्मा यद्यदुपाहितमस्य विभासम् ।
स्वच्छतया स्वयमप्यनुधत्ते विश्व बुधोऽपि तथा ध्वनिरुच्चैः ।।72।।

अथवा जिस प्रकार स्फटिक मणि एक ही प्रकार का होता है तथापि उसके पास जो-जो रंगदार पदार्थ रख दिये जाते हैं वह अपनी स्वच्छता से अपने आप उन-उन पदार्थों के रंगों को धारण कर लेता है उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान की उत्कृष्ट दिव्य ध्वनि भी यद्यपि एक प्रकार की होती है तथापि श्रोताओं के भेद से वह अनेक रूप धारण कर लेती है।

जिस प्रकार जल वृष्टि के समय में जल का रस, गन्ध, वर्ण एवं स्पर्श एक समान होते हुए भी विभिन्न मिट्टी के सम्पर्क से उसमें विभिन्न परिणमन होता है। लाल मिट्टी के सम्पर्क से जल लाल हो जाता है। काली मिट्टी के सम्पर्क से जल काला हो जाता है उसी प्रकार दिव्य ध्वनि रूपी जल विभिन्न भाषा-भाषी श्रोताओं के कर्ण रूपी मिट्टी में प्रवेश होने के बाद उस-उस भाषा रूप में परिणमन हो जाता है। वृष्टि जल का रस एक समान होते हुये भी विभिन्न वृक्ष में प्रवेश करके विभिन्न रस, रूप परिणमन कर लेता है जैसे—गन्ना के वृक्ष में प्रवेश करने से जल मधुर रस रूप होता है, नीम के वृक्ष में प्रवेश करके कड़वा (तिक्त) रस रूप होता है। मिर्च के वृक्ष में प्रवेश करके चरपरा रूप होता है। इमली के वृक्ष में प्रवेश करके खट्टा रस रूप परिणमन कर लेता है इसी प्रकार दिव्य ध्वनि रूपी जल विभिन्न भाषा-भाषियों के कर्ण (गव्हर) में प्रवेश करके विभिन्न रूप में परिणमन कर लेती हैं।

जो श्रोता संस्कृत जानता है उसके कर्ण गह्वर में (कर्ण पुट में) जाकर संस्कृत रूप में हिन्दी भाषी श्रोता को निमित्त पाकर हिन्दी भाषा रूप में, कन्नड़ भाषी श्रोता को निमित्त पाकर कन्नड भाषा रूप में, परिणमन कर लेती है। जिस प्रकार वर्तमान वैज्ञानिक युग में एक यन्त्र का आविष्कार हुआ है जिस यन्त्र के माध्यम से भाषा परिवर्तित हो जाती है। एक वक्ता इंग्लिश में भाषण कर रहा है और एक हिन्दी भाषी श्रोता उस वैज्ञानिक यन्त्र का प्रयोग करके इंग्लिश भाषण को परिवर्तित करके हिन्दी में सुन सकता है।

उस समवसरण रूपी धर्म महासभा में असंख्यात देव, करोड अवधि मनुष्य, लक्षावधि पशु विनम्र भाव से मित्रता से एक साथ बैठकर उपदेश सुनते हैं। दिव्य ध्वनि निश्रुत होकर पशु के कान में पहुँचने पर वह दिव्य ध्वनि पशु के भाषा रूप में परिवर्तित हो जाती थी।

दिव्य ध्वनि देवों के कान में पहुँच कर देव भाषा रूप परिणमन कर लेती है। इसलिए दिव्य ध्वनि वक्ता के अपेक्षा निश्रुत अवस्था में एक होते हुए भी विभिन्न श्रोताओं के निमित्त से विभिन्न भाषा रूप परिणमन करने के कारण अनेक स्वरूप हैं, इसलिए दिव्य ध्वनि अठारह महाभाषा तथा सात सौ लघु (क्षुद्र) भाषा स्वरूप हैं।

दिव्य ध्वनि सर्व भाषास्वभावी—

तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकम्।
प्रणियत्यमृतं यद्वत्प्राणिनो व्यापि संसदि॥ स्वं स्तो 97 श्लोक।

हे सर्वज्ञ हितोपदेश भगवन्! आपकी वचनामृत सर्वभाषा में परिणमन होने योग्य स्वभाव को धारण किये हुए हैं। विश्व धर्म सभा (समवसरण) व्याप्त हुआ श्री सम्पन्न वचनामृत प्राणियों को उसी प्रकार तृप्त करता है जिस प्रकार अमृतपान से प्राणी तृप्त हो जाता है।

योजनान्तर दूरसमीपस्थाष्टा-दशभाषा-सप्तदृतशत कुभाषायुत-तिर्यग्देव मनुष्य-भाषाकार-न्यूनाधिक-भावतीत मधुर मनोहर-गम्भीरविशद वागतिशय संम्पन्नः भवनवासिवाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-कल्पवासीन्द्र-विद्याधर-चक्रवर्ती-बल-नारायण-राजाधि-राज-महाराजार्धमहामहामण्डलीकेन्द्राग्निाँवायु-भूति-सिह-व्यालादि-देवविद्याधरमनुष्यर्षि-तिर्यगिन्द्रेभ्यः प्राप्तपूजातिशयो महावीरोऽर्थकर्त्ता।

एक योजन के भीतर दूर अथवा समीप बैठे हुए अठारह महाभाषा और सात, सौ लघु भाषाओं से युक्त ऐसे तिर्यञ्च, देव और मनुष्यों की भाषा के रूप में परिणत होने वाली तथा न्यूनता और अधिकता से रहित, मधुर, मनोहर, गम्भीर, और विशद ऐसी भाषा के अतिशय को प्राप्त, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क, कल्पवासी देवों के इन्द्रों से, विद्याधर, चक्रवर्ती, बलदेव. नारायण, राजाधिराज, महाराज, अर्द्धमण्डलीक, महामण्डलीक, राजाओं से, इन्द्र, अग्नि, वायु, भूति, सिंह, व्याल आदि देव तथा विद्याधर, मनुष्य, ऋषि और तीर्थञ्चों के इन्द्रों से पूजा के अतिशय को प्राप्त श्री महावीर तिर्यंकर अर्थकर्त्ता समझना चाहिए। षट्खंडागमे जीवट्ठाणं—61 पृष्ठ सतपरुवणाणुयोगद्वारे

दिव्य ध्वनि अक्षर-अनक्षरात्मक—

अक्खराणक्खराप्पिया। (क० पा०)

दिव्य ध्वनि अक्षर-अनक्षरात्मक है।

अनक्षरात्मकत्वेन श्रीतृश्रोत्रप्रदेश प्राप्ति समयपर्यंत··············तदन्तरं च श्रोतृजनाभिप्रेतार्थेषु संशयादि निराकरणेन सम्यग्ज्ञान जनकं··············। (गो० जी०)

केवल की दिव्य ध्वनि श्रोताओं के कर्णप्रदेश को जब तक प्राप्त नहीं होता है तब तक अनक्षर स्वरूप ही है। जब श्रोता के कर्ण प्रदेश में प्राप्त हो जाती है तब अक्षरात्मक रूप परिणमन हो जाती है। यथार्थ वचन का अभिप्राय श्रोताओं के संशय आदि को दूर करना है।

वयणेण विणा अत्थपदुप्पायणं ण संभवइ, सुहुमअव्याणं सण्णाए परुवणाणु-ववत्तीदो ण चाणक्खराए झुणीए अत्थपदुप्पायणं जुज्जदे, अणक्खरभासतिरिक्खे मोत्तूणण्णेसिं तत्तो अत्थावगमाभावदो। ण च दिव्वज्झूणी अणक्खरपिप्या चेव, अट्ठा-रससत्तसयभास…………कुभासाप्पियत्तादो।…………तेसिमणेयाणं बीजपदणिलीणत्थ-परुवायाणं दुवाल संगाणं कारओ गणहर भडारओ गंथकत्तारओ त्तिअण्भुवगमादो।

प्रश्न—वचन के बिना अर्थ का व्याख्यान सम्भव नहीं क्योंकि सूक्ष्म पदार्थों की संज्ञा अर्थात् संकेत द्वारा प्ररूपणा नहीं बन सकती। यदि कहा जाए कि अनाक्ष-रात्मक ध्वनि द्वारा अर्थ की प्ररूपणा हो सकती है, सो भी योग्य नहीं है, क्योंकि अनक्षर भाषायुक्त तिर्यञ्चों को छोड़कर अन्य जीवों को उससे अर्थ ज्ञान नहीं हो सकता है। और दिव्य-ध्वनि अनक्षरात्मक ही हो सो भी बात नहीं है। क्योंकि वह अठारह भाषा व सात सौ कु० (लघु भाषा) भाषा स्वरूप है।

उत्तर—अठारह भाषा व सात सौ कुभाषा स्वरूप द्वादशांगात्मक उन अनेक बीज पदों का प्ररूपक अर्थकर्त्ता तथा बीज पदों में लीन, अर्थ के प्ररूपक बारह अंगों के कर्त्ता "गणधर भट्टारक" ग्रन्थकर्त्ता हैं ऐसा स्वीकार किया गया है।

अभिप्राय यह है कि बीज पदों का जो व्याख्याता है वह ग्रन्थकर्त्ता कहलाता है। धवलपु० 1/1, 1, 50/284/3

दिव्य ध्वनि की अक्षरात्मकता—

तीर्थंकर वचनमनक्षरत्वाद् ध्वनिरूपं तत एव तदेकम्।

एकत्वान्न तस्य द्वैविध्यं घटत इति चेन्न, तत्र स्यादित्यादि असत्यमोषवचन-सत्वतस्तस्य ध्वनेरक्षरत्वसिद्धेः।

प्रश्न—तीर्थंकर के वचन अनक्षर रूप होने के कारण ध्वनिरूप हैं, और इसलिए वे एकरूप हैं, और एकरूप होने के कारण वे सत्य और अनुभय इस प्रकार दो प्रकार के नहीं हो सकते ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि केवली के वचन में 'स्यात्' इत्यादि रूप से अनुभय रूप वचन का सद्भाव पाया जाता है। इसलिये केवल ध्वनि अनक्षरात्मक है यह बात असिद्ध है।

साक्षर एव च वर्णसमुहान्नैव विनार्थगतिर्ज गतिस्यात्।

दिव्य ध्वनि अक्षररूप ही है, क्योंकि अक्षरों के समूह के बिना लोक में अर्थ का परिज्ञान नहीं हो सकता ॥ 93 ॥

यत्पृष्टमादितस्तेन तत्सर्वमनुपूर्वशः ।
वाचस्पतिरनायासाद भ'तं प्रत्यबूबुधत् ।। 190 ।।

आदिपु०–अ०1–पृ० 25

भरत ने जो कुछ पूछा—उसको भगवान् ऋषभदेव बिना किसी कष्ट के क्रम पूर्वक कहने लगे । 190 ।।

(b) दिव्य ध्वनि अनक्षरात्मक—

यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितोष्ठद्वयं ।
नो वांछाकलितं न दोषमलिनं नोच्छवासरूद्धक्रमं ।।
शांतामर्षविषैः समं पशुगणैराकर्णितं कर्षिभिस्तन्नः ।
सर्वविदो विनष्टविपदः पायादपूर्वं वचः ।।

सर्व जीव हितकर, वर्ण रहित, दोनों ओष्ठ के परिस्पंदन से रहित, इच्छा रहित, दोष रहित, उच्छ्वास रूद्ध से रहित, द्वेष आदि से रहित होने के कारण शान्त समान रूप से पशु-पक्षी मनुष्य-देव आदि द्वारा सुनने योग्य सम्पूर्ण विषय को प्रतिपादन करने वाला समस्त विपद से रहित, अपूर्व वचन (दिव्य-ध्वनि) हम सब की रक्षा करें ।

इस श्लोक में 'न' वर्ण सहित विशेषण से सिद्ध होता है दिव्य-ध्वनि अक्षर से रहित होने के कारण अनक्षरात्मक है ।

भाषात्मको भाषारहितश्चेति, भाषात्मको द्विविधोऽक्षरात्मकोऽनक्षरात्मकश्चेति । अक्षरात्मकः संस्कृतप्राकृतादिरूपेणायंम्लेच्छभाषाहेतुः, अनक्षरात्मको द्विन्द्रियादिशब्दरूपो दिव्य-ध्वनिरूपश्च ।

भाषा दो प्रकार के हैं—

(1) भाषात्मक,

(2) अभाषात्मक ।

पुनः भाषा (1) अक्षरात्मक, (2) अनाक्षरात्मक रूप से दो प्रकार के हैं—

अक्षरात्मक भाषा—

संस्कृत, प्राकृत, आर्य, म्लेच्छादि भाषा रूप जो शब्द हैं वे सब अक्षरात्मक भाषा है ।

अनक्षरात्मक भाषा—

द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञि, पंचेन्द्रिय जीवों के शब्द तथा केवल भगवान के दिव्य-ध्वनि अनक्षरात्मक है ।

दिव्य-ध्वनि अक्षर एवं अनक्षरात्मक है । इसमें सूक्ष्म भाषा विज्ञान, शब्द विज्ञान, ध्वनि विज्ञान के सिद्धान्त निहित हैं । जिस समय टेलिप्रिन्टर भेजा जाता है उस समय टेलिप्रिन्टर का संवाद व सन्देश कुछ अनेक अनक्षरात्मक संकेतात्मक (टिक-टक-टक-टर) ध्वनि रूप रहता है । संवाद ग्राहक उस संकेतात्मक ध्वनि को अक्षर भाषात्मक ध्वनि में परिवर्तित कर देता है ।

उसी प्रकार जब दिव्य-ध्वनि फिरती है तब दिव्य-ध्वनि अनक्षरात्मक रहती है। श्रोता के कर्ण में पहुँचने के बाद वह ध्वनि श्रोता के योग्य भाषा में परिवर्तित हो जाती है। इसलिए दिव्य ध्वनि निश्रुत होने के बाद जब तक श्रोता तक नहीं पहुँचती है तब तक वह दिव्य ध्वनि अनक्षरात्मक, अभाषात्मक (अनेकभाषात्मक, सर्वभाषात्मक), रहती है एवं जब श्रोता के कर्ण में प्रवेश करती है तब वह दिव्य-ध्वनि अक्षरात्मक, भाषात्मक, परिवर्तित हो जाती है।

दिव्य-ध्वनि देवकृत नहीं—

देवकृतो ध्वनिरि त्यसदेतद् देवगुणस्य तथा विहतीः स्यात् ।
साक्षर एव च वर्ण समूहान्नैव विनार्थगतिर्जगति स्यात् ॥ 73 ॥

आदि पुराण सर्ग 23

कोई-कोई लोग ऐसा कहते हैं कि वह दिव्य-ध्वनि देवों के द्वारा की जाती है, परन्तु उनका वह कहना मिथ्या है क्योंकि वैसा मानने पर भगवान के गुण का घात हो जाएगा अर्थात् वह भगवान का गुण नहीं कहलाएगा। देवकृत होने से देवों का कहलाएगा। इसके सिवाय वह दिव्य-ध्वनि अक्षर रूप ही है क्योंकि अक्षरों के समूह के बिना लोक में अर्थ का परिज्ञान नहीं होता।

दिव्य-ध्वनि देवकृत—

कथमेवं देवोपनीतत्वमिति चेत् ?
मागहादेवं संनिधाने तथा परिणामतया भाषया संस्कृत भाषया प्रवर्तते ।

दर्शनपाहुडटीका 35/28/13

प्रश्न—यह देवोपनीत कैसे है ?

उत्तर—यह देवोपनीत इसलिये है कि मगध देवों के निमित से संस्कृत रूप परिणत हो जाती है। क्रिया कलाप टीका 3—16/248/3

दिव्य-ध्वनि को अर्धमागधी, देवकृत अतिशय तथा केवल ज्ञान के अतिशय भी कहते हैं। हरिवंश पुराण में जिनसेन स्वामी दिव्य-ध्वनि को सर्वार्ध मागधी भाषा बताते हुए कहते हैं—

अमृतस्टोव धारां तां भाषां सर्वार्धमागधीं ।
पिबन् कर्णपुटैर्जैनी ततर्प त्रिजगज्जनः ॥ 16 ॥ **तृतीय सर्ग**

सर्वभाषारूप परिणमन करने वाली अमृत की धारा के समान भगवान की अर्धमागधी भाषा का कर्णपुटों से पान करते हुए तीन लोक के जीव संतुष्ट हो गये।

इसी शास्त्र में इसी तृतीय अध्याय में पूर्व उक्त जिनसेन स्वामी ही दिव्य-ध्वनि को भगवान द्वारा प्रतिपादित वचन है सिद्ध करते हुए बताते हैं कि—

धर्मोक्तौ योजनव्यापी चेतः कर्णरसायनम् ।
दिव्यध्वनि र्जिनेन्द्रस्य पुनाति स्म जगत्त्रयम् ॥ 38 ॥

जो धर्म का उपदेश देने के लिए एक योजन तक फैल रही थी तथा जो चित्त और कानों के लिए रसायन के समान थी ऐसी भगवान की दिव्यध्वनि तीनों जगत् को पवित्र कर रही थी।

उपरोक्त समस्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वस्तुतः दिव्यध्वनि पूर्वोपार्जित सर्वश्रेष्ठ तीर्थङ्कर प्रकृति के उदय से तथा भव्यों के पुण्य उदय से तीर्थंकर के सर्वाङ्ग से ओंकार ध्वनि स्वरूप सर्व भावात्मक अनाक्षरात्मक (कोई निश्चित एक भाषा नहीं होने के कारण) खिरती हैं। परन्तु गणधर देव उस बीजात्मक, सूत्रात्मक उपदेश को ग्रंथ रूप से रचना करते हैं पूर्वाचार्य ने कहा भी है—

"अरिहंत भासियत्थं गणहर देविहं गंथियं सम्मं।"

अरिहंत भगवान के द्वारा प्रतिपादित अर्थ को गणधर देव सम्यक् रूप से ग्रंथित करते हैं अर्थात् तीर्थङ्कर भावश्रुत के कर्त्ता हैं एवं गणधर द्रव्यश्रुत के कर्त्ता हैं। तार्किक चूडामणि महान् दार्शनिक भगवत् वीरसेन स्वामी विश्व के अनुपम साहित्य धवला में निम्न प्रकार वर्णन करते हैं—

पुणो तेणिंदभूदिणा भाव-सुद-पज्जय-परिणदेण बारहंगाणं चोद्दसपुव्वाणं च गंथाणमेक्केण चेव मुहुत्तेण कमेण रयना कदा। तदो भाव-सुदस्य अत्थ-पदाणं च तित्थयरो कत्ता। तित्थयरादो सुद-पज्जाएण गोदमो परिणदो त्ति दव्व-सुदस्य गोदमो कत्ता। छक्खंडागमे जीवट्ठाणं पृ–65

अनन्तर भाव श्रुतरूप पर्याय से परिणत उस इन्द्रभूति ने 12 अंग और 14 पूर्व रूप ग्रंथों की एक ही मुहूर्त में क्रम से रचना की। अतः भावश्रुत और अर्थपदों के कर्त्ता तीर्थंकर हैं। तथा तीर्थंकर के निमित्त से गौतम गणधर श्रुतपर्याय से परिणत हुए इसलिये द्रव्यश्रुत के कर्त्ता गौतम गणधर हैं। इस तरह गौतम गणधर से ग्रंथ रचना हुई।

जिस प्रकार जलवृष्टि होने के पश्चात् वह जल नदी में श्रोत रूप में बहकर जाता है उस जल को जीवनोपयोगी बनाने के लिए इंजिनियर नदी में डेम बांधकर पानी को संचित करते हैं उस पानी को बड़े-बड़े पानी पाइप के द्वारा वहन करके पानी टंकी में सञ्चित करते हैं। पुनः छोटे-छोटे नल द्वारा नगर, गली, घर आदि में पहुँचाते हैं। घर में जो पानी पहुँचता है उसको नल का पानी कहते हैं। वस्तुतः पानी नल का नहीं है नल का पानी जलकुंड से आया एवं जलकुंड का पानी नदी से आया और नदी का पानी वृष्टि से आया। अतः निश्चय से जिसको हम नल का पानी कहते वह पानी वृष्टि का है। इसी प्रकार दिव्य ध्वनि रूपी जल सर्वज्ञ भगवान से निर्झरित होता है उस महान श्रोत को साधारण जनोपयोगी बनाने के लिए गणधर रूपी इंजिनियर ग्रंथ (आगय) रूपी डेम (कृत्रिम जलाशय) में संचित करते हैं। जिस प्रकार संचित जल छोटे-छोटे पाइपों के माध्यम से घर-घर पहुँचाया जाता है। उसी प्रकार मगध जाति के देवों के माध्यम से उस पवित्र दिव्य ध्वनि रूपी जल को जन-जन तक पहुँचाया जाता है।

जिस प्रकार एक भाषणकर्ता बहुजन के मध्य में भाषण करता है उस भाषण को सर्व श्रोताओं के समीप पहुँचाने के लिए माइक लाउडस्पीकर का प्रयोग

किया जाता है। भाषणकर्त्ता जो भाषण करता है वही भाषण ग्रहण करके इलेक्ट्रो मेग्नेटिक वेव में परिवर्तित करके लाउडस्पीकर तक पहुँचा देता है और लाऊड-स्पीकर उस इलेक्ट्रो मेगनेटिक वेव को परिवर्तित कर साउण्ड वेव रूप में परिवर्तित कर देता है। जिससे दूर दूरस्थ श्रोता लोग भी भाषण को स्पष्ट रूप से सुनने में समर्थ होते हैं। वस्तुतः भाषण विषय, भाषणकर्त्ताकाहोते हुए भी साधारण भाषा में साधारणतः लाऊडस्पीकर का शब्द है कहा जाता है। उसी प्रकार दिव्य ध्वनि वस्तुतः तीर्थंकर से निर्झरित होती है। गणधर तथा मागध देवों के द्वारा योग्य रीति से जन-जन तक पहुँचाया जाता है। जिस प्रकार जल पाईप अथवा लाऊडस्पीकर के माध्यम से पानी तथा भाषण जन-जन तक पहुँचाने के कारण निर्मित वशात पानी को नल का पानी, भाषण को लाऊडस्पीकर का कहा जाता है उसी प्रकार दिव्य ध्वनि को देव पुनीता कहना नैमित्तिक व्यवहार मात्र है।

मागध जाति के देव दिव्य ध्वनि को जन-जन तक पहुँचाने के कारण उनका उपकार स्वीकार करके उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिए भी देवकृत कहना युक्ति संगत है। उपरोक्त वर्णन प्राचीन आचार्यकृत कोई भी ग्रंथ में स्पष्ट वर्णन नहीं है परन्तु मैंने विषय को स्पष्टीकरण करने के लिए अपनी बुद्धि, तर्क से किया है। इसमें जो सत्यांश है उसको पाठकगण ग्रहण करके असत्यांश को मेरा अज्ञानता का कारण मानकर त्याग कर देवें।

दिव्य ध्वनि का महत्वः—महान आध्यात्मिक क्रांतिकारी संत कुन्दकुन्दाचार्य दिव्य ध्वनि का आलोकित अनुपम अद्वितीय महत्व बताते हुए अष्ट पाहुड में निम्न-प्रकार वर्णन करते हैं—

जिणवयण मोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूदं।
जरमरण वाहि हरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ 17 ॥ अष्ट पाहुड दंसणपाहुड

जिनेन्द्र भगवान के अनुपम बचन महान औषधि सदृश हैं। जिस प्रकार महौषधि सेवन से शारीरिक रोग नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार दिव्य ध्वनि रूपी महौषधि सेवन से मानसिकआध्यात्मिक एवं सांसारिक रोग नष्ट हो जाते हैं। विषय महाविष तुल्य है। विष वेदना दूर करने के लिये आयुर्वेद के अनुसार पहले विष रोगी को विरेचन औषधि देकर **वांति** कराते हैं, उसी प्रकार विषय सुख रूपी विष को **वांति** कराने के लिए जिनेन्द्र वचन महौषधि स्वरूप है, लोकोक्ति है अमृतपान करने से जीवन अजरामर हो जाता है। वस्तुतः दिव्यध्वनि ही वचनामृत है, इस वचनामृत को जो पान करता है वह जन्म, जरा, मरण एवं आदि व्याधि-उपाधि से रहित होकर शाश्वतिक अमृत तत्व (मोक्ष तत्व) को प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण दुःखों का कारण अज्ञान, मोह, कुचारित्र है। दिव्यध्वनि के माध्यम से अज्ञान, मोह रूपी अंधकार नष्ट होने से जीव के अंतःकरण में ज्ञानरूपी ज्योति प्रज्जवलित हो जाती है जिससे अज्ञान आदि अंधकार नष्ट हो जाता है, आध्यात्मिक ज्योति से जीव यथार्थ सुखमार्ग को पहिचान कर तदनुकूल आचरण करता है, जिससे

शाश्वतिक सुख प्राप्त होता है और समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं। इसीलिये कुन्द-कुन्द स्वामी कहते हैं—यह दिव्यध्वनि "तिहुवण-हिद-मधुर-विसद-वक्काणं' अर्थात् त्रिभुवन हितकारी, मधुर विषद स्वरूप है।

देवकृत तेरह अतिशय—

माहप्पेण जिणाणं, संखेज्जेसुं च जोयणेसु वणं।

पल्लव-कुसुम-फलद्धी-भरिदं जायदि अकालम्मि॥916॥ ति. प. 2-अ. 4-पृ. 287

कंटय-सक्कर-पहुदिं, अवणित्ता वादि सुरकदो वाऊ।

मोत्तूण पुव्व-वेरं, जीवा वट्टंति मेत्तीसु॥917॥

दप्पण-तल-सारिच्छा, रयणमई होदि तेतिया भूमी।

गंधोदकेई वरिसइ, मेघकुमारो पिसक्क-आणाए॥918॥

फल-भार-णमिद-साली-जवादि-सस्सं सुरा विकुव्वंति।

सव्वाणं जीवाणं, उप्पज्जदि णिच्चमाणंदो॥919॥

वायदि विक्किरियाए, वायुकुमारो हु सीयलो पवणो।

कूव-तडायादीणि णिम्मल-सलिलेण पुण्णाणि॥920॥

धूमुक्कपडण-पहुदीहि विरहिदं होदि णिम्मलं गयणं।

रोगादीणं बाधा, ण होंति सयलाण जीवाणं॥921॥

जक्खिद-मत्थएसुं, किरणुज्जल-दिव्व-धम्म चक्काणि।

दट्ठूण संठियाइं, चत्तारि जणस्स अच्छरिया॥922॥

छप्पण्ण चउदिसासुं, कंचण-कमलाणि तित्थ-कत्ताणं।

एक्कं च पायपीढे, अच्चण-दव्वाणि दिव्व-विहिदाणि॥923॥

(1) तीर्थंकरों के महात्म्य से संख्यात योजनों तक वन प्रदेश असमय में ही पत्रों, फूलों एवं फलों से परिपूर्ण समृद्ध हो जाता है।

(2) काटों और रेती आदि को दूर करती हुई सुखदायक वायु प्रवाहित होती है।

(3) जीव पूर्व वैर को छोड़कर मैत्री-भाव से रहने लगते हैं।

(4) उतनी भूमि दर्पणतल सदृश स्वच्छ एवं रत्नमय हो जाती है।

(5) सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देव सुगन्धित जल की वर्षा करता है।

(6) देव विक्रिया से फलों के भार से नम्रीभूत शालि और जौ आदि सस्य की रचना करते हैं।

(7) सब जीवों को नित्य आनन्द उत्पन्न होता है।

(8) वायुकुमार देव विक्रिया से शीतल पवन चलाता है।

(9) कूप और तालाब आदिक निर्मल जल से परिपूर्ण हो जाते हैं।

(10) आकाश धुआँ एवं उल्कापातादि से रहित होकर निर्मल हो जाता है।

(11) सम्पूर्ण जीव रोगबाधाओं से रहित हो जाते हैं।

(12) यक्षेन्द्रों के मस्तकों पर स्थित और किरणों की भाँति उज्ज्वल ऐसे चार दिव्य धर्मचक्रों को देखकर मनुष्यों को आश्चर्य होता है। तथा—

(13) तीर्थंकरों की चारों दिशाओं (विदिशाओं) में छप्पन स्वर्ण-कमल, एक पादपीठ और विविध दिव्य पूजन द्रव्य होते हैं। 916-923 ॥

तीर्थंकर के महान् पुण्य प्रताप से तथा आध्यात्मिक वैभव से प्रेरित, अनुप्राणित होकर तथा तीर्थंकर के विश्वकल्याणकारी अमर संदेश के प्रचार-प्रसार करने के लिये देवलोग भी सक्रिय भाग लेते हैं। उसके लिये समवसरण की रचना के साथ-साथ कुछ महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य करते हैं, उसको देवकृत अतिशय कहते हैं।

देवकृत अतिशय :—

देव रचित है चार दश, अर्ध मागधी भाष।
आपस माहीं मित्रता, निर्मल दिश आकाश ॥
होत फूलफल ऋतु सबै, पृथ्वी काँच समान।
चरण कमल तल कमल है, नभतैं जय-जय बान ॥
मंद सुगन्ध बयार पुनि, गंधोदक की वृष्टि।
भूमि विषै कंटक नहीं, हर्षमयो सब सृष्टि ॥
धर्म चक्र आगे रहे, पुनि वसु मंगल सार।
अतिशय श्री अरिहंत के, ये चौंतीस प्रकार ॥

(1) सब ऋतुओं के फलपुष्प एक साथ होना :—

तीर्थंकर के सातिशय पुण्य प्रताप से प्रकृति कण-कण में प्रभावित हो जाती है। तीर्थंकर जिस क्षेत्र में रहते हैं, योग्य समय में योग्य वर्षा होती है तथा वातावरण अत्यन्त पवित्र प्रशान्त होने के कारण तथा तीर्थंकर अहिंसा, मैत्रीभाव, विश्व मैत्री, प्रेम से प्रभावित होकर एक ही समय में सब ऋतुओं के फल-पुष्प, पुष्पित, पल्लवित हो जाते हैं।

परिनिष्पन्न-शाल्यादिसस्यसंपन्महो तदा ।
उद्भूत हर्ष रोमांचा स्वामिलाभादिवा भवत् ॥266॥

आ० पु० अ० 25 पृ० 631

भगवान के विहार के समय पके हुए शाली आदि धान्यों से सुशोभित पृथ्वी ऐसी जान पड़ती थी मानोंस्वामी का लाभ होने से उसे हर्ष के रोमांच ही उठ आए हों।

अकालकुसुमोद्भेदं दर्शयन्ति स्म पादपाः।
ऋतुभिः सममागत्य संरूद्धा साध्वसादिव ॥269॥

वृक्ष भी असमय में फूलों के उद्भेद को दिखला रहे थे अर्थात् वृक्षों पर बिना समय के ही पुष्प आ गये थे और उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों सब ऋतुओं ने भय से एक साथ आकर ही उनका आलिंगन किया हो।

अर्हंयव इवाजस्रं फलपुष्पानत द्रुमाः ।
सहैव षडपि प्राप्ता ऋतु-वस्तं सिषेविरे ॥18॥

हरि० पु०-पृ० अ० 3–पृ० 25

जिनमें समस्त वृक्ष निरन्तर फल और फूलों से नम्रीभूत हो रहे थे ऐसी छहों ऋतुओं "मैं पहले पहुँचू" "मैं पहले पहुँचू" इस भावना से ही मानो एक साथ आकर उनकी सेवा कर रही हैं।

क्षेत्र परिस्थिति, जलवायु भावात्मक परिस्पंदन का परिणाम भी वनस्पतियों के ऊपर पड़ता है जिस प्रकार हिमालय के पाद्देश चिरश्रोता, गंगा, सिन्धु, नीलनदी ब्रह्मपुर आदि की तटभूमि सुन्दर वन में चिरहरित वनस्पति होती है। वर्षा ऋतु में वनस्पति पल्लवित पुष्पित होती है परन्तु ग्रीष्म ऋतु में नहीं। वर्तमान वैज्ञानिक लोग विशेषतः मनोवैज्ञानिक लोग सिद्ध किए हैं कि वनस्पतियाँ, पवित्र, प्रेम, अहिंसा भाव तथा मधुर संगीत से विशेषतः पल्लवित पुष्पित फलवती होती हैं इसका वर्णन आगे जीव-विज्ञान में किया जाएगा।

उपरोक्त उदाहरण से सिद्ध होता है कि वनस्पति परिसर एवं भावों से प्रभावित होती हैं इसलिए तीर्थंकर के पवित्र वातावरण से अहिंसात्मक प्रभाव से प्रभावित होकर वृक्षों पर एक ही समय में सब ऋतुओं के फल-फूल लग जाते हैं।

(2) निष्कंटक पृथ्वी होना :—

पवन कुमार जाति के देवों के द्वारा तीर्थंकर के विहार करते समय सुगन्ध मिश्रित हवा चलती है। पृथ्वी धूल, कंटक (काँटा) घास, पाषाण, कीटादि रहित होकर स्वच्छ रहती है।

देवा वायुकुमारास्ते योजनान्तर्धरातलम् ।
चक्रुः कण्टकपाषाण कीटकादि विर्वजितम् ॥22॥

वायु कुमार के देव एक योजन के भीतर की पृथ्वी को कण्टक, पाषाण तथा कीड़े-मकोड़े आदि से रहित कर रहे थे ॥22॥

जब अपना घर, ग्राम या नगर में कोई विशिष्ट अतिथि, नेता, मंत्री आदि आते हैं तब उस अवसर पर नगर, रास्ता आदि स्वच्छ करते हैं। तो क्या ? तीन लोक के प्रभु, जगतउद्धारक, विश्व बन्धु तीर्थंकर के आगमन से देवलोक क्या पृथ्वी रास्ता स्वच्छ करने में क्या आश्चर्य है।

(3) परस्पर मैत्री :—

तीर्थंकर भगवान पूर्वभव के विश्व मैत्री भावना से प्रेरित होकर जो बीजभूत पुण्य कर्म का बन्ध किये थे उस बीजभूत पुण्य कर्म तीर्थंकर अवस्था में अंकुरित-पल्लवित होकर फल प्रदान कर रहा है। उस मैत्री फल के कारण उनके पवित्र चरण के सानिध्य प्राप्त करते हैं, वे सम्पूर्ण जीव परस्पर की शत्रुता भूलकर परस्पर मैत्री भाव से बंध जाते हैं।

अन्योन्य-गंधमासो द्रुमक्षमाणामपि द्विषां ।
मैत्री वभूव सर्वत्र प्राणिनां धरणी तले ॥17॥

जो विरोधी जीव एक-दूसरे की गंध भी सहन करने में असमर्थ थे सर्वत्र पृथ्वी तल पर उन प्राणियों में मैत्री भाव उत्पन्न हो गया था।

जीवों में विरोध दूर होकर परस्पर में प्रीति भाव उत्पन्न करने में प्रीतिंकर नामक देव तत्पर रहते थे।

(4) दर्पण तल के समान स्वच्छ पृथ्वी होना :—

स्वान्तः शुद्धि जिनेशाय दर्शयन्तीव भूवधूः।
सर्वरत्नमयी रेजे शुद्धादर्शतालोज्ज्वला ॥19॥ ह० पु०/अ० 3

सर्व रत्नमयी तथा निर्मल दर्पण तल के समान उज्जवल पृथ्वी रूपी स्त्री ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो जिनेन्द्र भगवान् के लिए अपने अंतःकरण की विशुद्धता ही दिखला रही हो।

जिनसेन स्वामी आदि पुराण में निम्न प्रकार वर्णन करते हैं—

आदर्शमण्डलाकारपरिवर्तित भूतलः ॥25॥

आदर्श (दर्पण) के समान पृथ्वी मण्डल को देवलोग स्वच्छ, पवित्र, रत्नमय बना देते हैं।

(5) शुभसुगन्धित जल की वृष्टि :—

तदनन्तरमेवोच्चैस्तनिताः स्तनिताभिधाः।
कुमारा वदाषुमैंधीभूता गन्धोदकम् शुभम् ॥23॥ ह० पु० अ० 3

उनके बाद ही जोर की गर्जना करने वाले स्तनित कुमार नामक देव मेघ का रूप धारण कर शुभ सुगन्धित जल की वर्षा कर रहे थे।

(6) पृथ्वी शस्य से पूर्ण होना :—

रेजे शाल्यादि सस्यौघैर्मेदिनी फल शालिभिः।
जिनेन्द्र दर्शनानन्द प्रोद्भिन्न पुलकैरिव ॥25॥ हरिवंश पुराण। तृतीय सर्ग

फलों से सुशोभित शालि आदि धान्यों के समूह से पृथ्विी ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो दर्शन से उत्पन्न हुए हर्ष से उसके रोमाञ्च ही निकल आये हों।

जिस प्रकार भौतिक वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिक लोग कृत्रिम वर्षा करते हैं तथा असमय में ही वैज्ञानिक साधनों से कम दिन में शस्य उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार देव लोग भी अपनी दैविक शक्ति के माध्यम से शस्यादि उत्पन्न करते हैं।

(7) सम्पूर्ण जीवों को परमानंद प्राप्त होना :—

विहरत्युपकाराय जिने परम बांधवे।
वभूव परमानन्दः सर्वस्य जगतस्तदा ॥21॥ हरिवंश पु० सर्ग 3

परम बन्धु जिनेन्द्र देव के जगत् कल्याणार्थ विहार होने पर समस्त जगत को परम आनन्द प्राप्त होता था। जिस प्रकार जगत हितकारी विश्व बंधु तीर्थंकर के दर्शन से विहार से, समस्त जगत् को परम आनन्द प्राप्त होता है।

(8) सुगन्धित वायु बहना :—

जनिताङ्ग सुख स्पर्शो ववौ विहरणानुगः ।
सेवामिव प्रकुर्वाणः श्री वीरस्य समीरणः ॥20॥ हरिवंश पु०/पर्व 3

शरीर में सुखकर स्पर्श उत्पन्न करने वाली विहार के अनुकूल-मंद सुगन्धित वायु बह रही थी जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान की सेवा ही कर रही हो। जिस प्रकार वर्तमान भौतिक वैज्ञानिक युग में उष्णता शांत करने के लिये फेन, कूलर, वातानुकूल प्रकोष्ठ आदि का आविष्कार हुआ है उसी प्रकार देव लोग अपनी दैविक ऋद्धि वैक्रियक शक्ति से शीतल पवन प्रवाहित करते थे।

(9) जलाशय का जल निर्मल होना :—

जिस प्रकार एक नक्षत्र विशेष के उदय से या निर्मली (कतक फल) घिसकर डालने से कीचड़ नीचे दब जाता है एवं पानी स्वच्छ हो जाता है उसी प्रकार देव लोग अपनी शक्ति से तीर्थङ्कर जहाँ-जहाँ विहार करते थे वहाँ के जलाशय को निर्मल जल से परिपूर्ण कर देते थे।

(10) आकाश निर्मल होना :—

जिनेन्द्र केवल ज्ञान वैमल्यमनुकुर्वता ।
घनावरणमुक्तेन गगनेन विराजितम् ॥26॥
नीरजोभिरहोरात्रं जनताभिरिवेश्वरः ।
आशाभिरपि नैर्मल्यं विभ्रतीभिरुपासितः ॥27॥ हरिवंश पु०/सर्ग 3

मेघों के आवरण से रहित आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो वह जिनेन्द्र देव के केवल ज्ञान की निर्मलता का ही अनुकरण कर रहा हो।

जिस प्रकार रजोधर्म से रहित होने के कारण निर्मलता-शुद्धता को धारण करने वाली स्त्रियाँ रात-दिन अपने पति की उपासना करती हैं उसी प्रकार रज अर्थात् धूलि से रहित होने के कारण उज्ज्वलता को धारण करने वाली दिशायें भगवान् की उपासना कर रही थीं।

जिस प्रकार मेघाछिन्न आकाश तीव्र वायु प्रभाव से मेघ हटने के पश्चात् निर्मल हो जाता हैं उसी प्रकार देव लोग अपनी विशिष्ट दैविक शक्ति से आकाश स्थित बादल धूली, धुआँ आदि को दूर कर देते हैं। जिससे आकाश अत्यन्त निर्मल हो जाता है।

(11) सम्पूर्ण जीव निरोगी होना :—

तीर्थङ्कर के सातिशय पुण्य प्रभाव से, पुण्य पवित्रमय वातावरण से एवं देवों के विशेष प्रभाव से सम्पूर्ण जीव रोग बाधाओं से रहित हो जाते हैं। पूर्वकृत पुण्य प्रभाव से देवों को विशेष ऋद्धि प्राप्त होती है जिसके माध्यम से वे लोग अनुग्रह निग्रह करने में समर्थ हो जाते हैं। तार्किक चूडामणी अकलङ्क देव राजवार्तिक में बताते हैं।

शापानुग्रह लक्षणः प्रभावः ॥2॥ शापोऽनिष्टापादनम् अनुग्रह इष्ट प्रतिपादनम् तल्लक्षणः प्रवृध्दोभाव प्रभाव इत्याख्यायेत ।

शाप और अनुग्रह शक्ति को प्रभाव कहते हैं। अनिष्ट वचनों का उच्चारण शाप है। इष्ट प्रतिपादन को अनुग्रह कहते हैं। शाप या अनुग्रह करने की शक्ति को प्रभाव कहते हैं; जो बढ़ा हुआ भाव हो, उसका नाम प्रभाव है। आयुर्वेद में वर्णन है कि कुछ रोग दैव प्रकोप से होता है, एवं देव प्रसन्न से अर्थात् उनके सूक्ष्म दैविक उपचार से अनेक रोग भी दूर हो जाते हैं। यह वर्णन कल्याणकारक में जैनाचार्य उग्रादित्य, बौद्ध आचार्य वाग्भट अष्टांग-हृदय में तथा हिन्दू आचार्य चरक, सुश्रुत अपने-अपने ग्रंथ में किये हैं—इसका वर्णन हमने भी संक्षिप्त चिकित्सा विज्ञान में किया है वहाँ से देखने का कष्ट करें।

(12) **धर्म चक्र**—

सहस्त्रारं हसद्दीप्त्या सहस्त्रकिरणद्युति।
धर्म चक्रं जिनस्याग्रे प्रस्थानास्थानयोरभात् ।।29।।

विहार करते हों, चाहे खड़े हों प्रत्येक दशा में श्री जिनेन्द्र के आगे, सूर्य के समान कान्ति वाला तथा अपनी दीप्ति से हजार आरे वाले चक्रवर्ती के चक्ररत्न की हँसी उड़ाता हुआ धर्म चक्र शोभायमान रहता था।

जक्खिंदमत्थएसुं किरणुज्जलदिव्वधम्मचक्काणि।
दट्ठूणं संठियाइं चत्तारि जणस्स अच्छरिया।। तिलोय पण्णत्ति 922
अ० 4 पृ० 280

यक्षेंद्रों के मस्तकों पर स्थित तथा किरणों से उज्जवल ऐसे चार दिव्य धर्म चक्रों को देखकर लोगों को आश्चर्य होता है।

सहस्त्रारस्फुरद्धर्म चक्र रत्नपुरः सरः ।।256।। आदि पुराण

तीर्थङ्कर के आगे हजार आरे वाले देदीप्यमान धर्मचक्र चलता है। जिस प्रकार चक्रवर्ती चक्ररत्न के माध्यम से षड्खण्ड को विजय करता है उसी प्रकार धर्म चक्रवर्ती तीर्थंकर भगवान् अन्तरंग सम्यक् दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचरित्र, उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य, ब्रह्मचर्य आदि धर्मचक्र (धर्म समूह) के माध्यम से अंतरंग सम्पूर्ण शत्रुओं को पराजय करके पहले स्वयं के ऊपर विजयी बने। जो आत्म विजयी होता है, वह विश्व विजयी होता है। इस न्याय अनुसार तीर्थङ्कर भगवान आत्म विजयी होने के कारण विश्व विजयी होते हैं। उस धर्म विजय के बहिरंग चिन्ह स्वरूप एक हजार (1000) आरा वाले प्रकाशमान धर्मचक्र तीर्थङ्कर के आगे-आगे अन्याघात रीति से चलता है।

चक्र अनेक प्रकार के होते हैं। प्राचीन साहित्य में एक अस्त्र विशेष को भी चक्र कहते थे जिनके माध्यम से चक्रवर्ती दिग्विजय करता है। युद्ध के समय में एक प्रकार की व्यूह रचना होती थी जिनका नाम चक्रव्यूह था। धर्म समूह को धर्म-चक्र कहते हैं। धर्म चक्र के माध्यम से जब तीर्थंकर अंतरंग समस्त शत्रुओं को परास्त करके आत्म विजयी होते हैं तब अंतरंग धर्मचक्र के चिन्ह स्वरूप मानो बहिरंग एक हजार आरे वाले देदीप्यमान धर्मचक्र तीर्थंकर के सम्मुख चलता है। महान तार्किक आचार्य कवि समंत भद्र स्वामी—स्वयंभूस्त्रोत में विभिन्न चक्रों का अलंकार पूर्ण चमत्कार वर्णन अग्र प्रकार किये हैं।

चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण
जित्वा नृपः सर्वनेरन्द्र चक्रम् ।
समाधि चक्रेण पुनर्जिगाय,
महोदयो दुर्जय मोह चक्रम् ॥77॥ **स्वयंभूस्जोत**

शान्तिनाथ तीर्थंकर गृहस्थावस्था में भयंकर सुदर्शन चक्र रत्न के माध्यम से सम्पूर्ण नरेन्द्र चक्र (राज समूह) को जीतकर चक्रवर्ती पदवी को प्राप्त किये थे। सम्पूर्ण राजवैभव त्याग करके जब निर्ग्रन्थ मुनि बने तब समाधि चक्र (धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान समूह) से दुर्जय महाप्रभावशाली मोहचक्र (मोहनीय कर्म समूह) को जीतकर तीन लोक के अधीश्वर धर्मचक्री तीर्थंकर बने।

यस्मिन्नभूद्राजनि राज चक्रं,
मुनौ दयादीधिति धर्म चक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं,
ध्यानोन्मुखे ध्वंसिकृतान्तचक्रम ॥79॥

जिस समय शान्तिनाथ तीर्थंकर गृहस्थ अवस्था में एकाधिपति सम्राट (चक्रवर्ती) थे, उस समय राजचक्र (राजा समूह) हाथ जोड़कर नम्र भाव से उनकी अधीनता स्वीकार किये थे। सर्वस्व त्याग करके जब वे मुनि अवस्था को धारण किये तब वे दयारूपी दैदीप्यमान, प्रकाश के धारण करने वाले धर्म चक्र (उत्तम क्षमा, मार्दव,, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिन्चन्य, ब्रह्मचर्य, सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक चरित्र, ध्यान आदि) को स्वयं के अधीन कर लिए अर्थात् वे सम्पूर्ण धर्म को सम्यक् रूप से पालन किये। धर्म चक्र के माध्यम से कृतांत चक्र को ज्ञानावरण आदि कर्म को नष्ट करके सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करने वाला ज्ञानचक्र (ज्ञान समूह अर्थात् अखण्ड केवल ज्ञान) को प्राप्त किये, उस समय 1000 आरे वाले प्रकाशमान धर्मचक्र तीर्थंकर के अधीन हो गया। समवसरण में विराजमान होकर जब धर्मोपदेश देने लगे तब देवचक्र (देवसमूह) बद्धांजलि होकर भगवान की भक्ति करने लगे। अंतिम योग-निरोध समय में ध्यानरूपी चक्र से कृतांत चक्र (चक्रसमूह) को विध्वंस करके अध्यात्म गुण धर्म चक्र (अध्यात्मिक गुण समूह) को प्राप्त हुए।

बौद्ध धर्म में भी वर्णन है कि गौतम बुद्ध जब बोधि प्राप्त किये तब से वे धर्मचक्र का प्रवर्तन किये। उसे धर्मचक्र के स्मरण स्वरूप अशोक ने अशोक स्तम्भ के ऊपर (सारनाथ के अशोक स्तम्भ) धर्मचक्र की प्रतिकृति बनाया था। स्वतंत्र भारत का राष्ट्रीय चिन्ह यह अशोक स्तम्भ है। इस अशोक स्तम्भ में 24 आरे वाले चक्र के ऊपर चतुर्मुखी सिंह बैठा हुआ है। नीचे एक तरफ बैल है एक तरफ घोड़ा है। सूक्ष्म ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने में इसमें जैनों के बहुत कुछ संकेत रूप से इतिहास सिद्धान्त की गरिमा गाथा निहित है। 24 आरे जैनों के सुप्रसिद्ध 24 तीर्थंकर के सूचना स्वरूप हैं। बैल जैनधर्म के वर्तमानकालीन आदि धर्म प्रवर्थक वृषभदेव (आदिनाथ) का लक्षण है। वृषभ का अर्थ धर्म और श्रेष्ठ होता है। बैल (वृषभ) बलभद्रता का प्रतीक है। वृषभ (साँड) स्वातन्त्र्य प्रेमी का भी प्रतीक है

क्योंकि साँड किसी के अधीन नहीं रहता । बैल शुभ का भी प्रतीक है । आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मिक सुख-शान्ति को योग कहते हैं । जैसे अरहन्त या सिद्ध के अनन्त सुख क्षायिक भोग पाया जाता है ।

जैनों के वर्तमानकालीन तृतीय तीर्थंकर संभवनाथ भगवान हैं । उनका लांछन घोड़ा है । घोड़ा तीव्र गमन का प्रतीक है । गमन अर्थात आगे बढ़ता, उन्नति करना, उत्थान करना, उत्क्रान्ति करना आदि है ।

जैनों के अन्तिम तीर्थंकर ऐतिहासिक प्रसिद्ध बुद्ध के समकालीन महावीर भगवान हैं उनके चिह्न सिह हैं । सिह शौर्य, वीर्य, साहस, धर्म पराक्रम का प्रतीक है । सम्पूर्ण तीर्थंकर समवसरण में जिस आसन पर बैठते हैं उस आसन को चार सिंह की मूर्ति धारण करते हैं । सम्पूर्ण तीर्थंकर के सिंहासन का प्रतीक ऊपर के चार सिंह हैं ।

जब तक धर्म चक्र (धर्मसमूह) चलता रहता है तब तक जन-गण-मन में, देश-देश में, समाज राष्ट्र में व्यवस्था ठीक रूप से बनी रहती है तथा सुख शान्ति रहती है धर्म के साथ-साथ साहस, निष्ठा, धैर्य, पराक्रम से जब आगे बढ़ते हैं तब अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं ।

(13) चरण के नीचे कमलों का रचनादि होना—

जब तीर्थंकर भगवान जन-जन को पवित्र करने के लिए विश्व को सत्य अहिंसा प्रेम, मैत्री, समता का दिव्य अमर संदेश देने के लिए मंगल विहार करते हैं तब भक्ति-वशतः देवलोग भगवान के पावन चरण कमल के नीचे स्वर्ण कमल की रचना करते हैं ।

उन्निद्रहेमनवपंकज पुञ्जकांति
पर्युल्ल सन्नखमयूख शिखाभिरामौ
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥36॥

(भक्तामरस्त्रोत)

हे, जगदोद्धारक विश्व बन्धु तीर्थंकर भगवान ! धर्मोपदेश देने के लिए जब आप मंगल विहार करते हैं तब आपके मंगलमय चरणकमल के नीचे देवगण विकसित, नवीन, प्रकाशमय, सुन्दर, मनोहरी सुवर्ण कमलों की रचना करते हैं ।

मकरन्दरजोवर्षि प्रत्यग्रोदभिन्न केसरम्
विचित्र रत्न निर्माण कर्णिकं विलसद्दलम् ॥272॥

आ० पृ० पर्व० 25–पृ०633

भगवच्चरणन्यास प्रदेशेऽधिनभः स्थलम् ।
मृदुस्पर्शमुदारश्रि पङ्कजं हैममुद्बभौ ॥273॥

जो मकरन्द और पराग की वर्षा कर रहा है, जिसमें नवीन केसर उत्पन्न हुई है, जिसकी कर्णिका अनेक प्रकार के रत्नों से बनी हुई है, जिससे दल अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं, जिसका स्पर्श कोमल है और जो उत्कृष्ट शोभा से सहित है ऐसा स्वर्णमय कमलों का समूह आकाश तल में भगवान के चरण रखने की जगह में सुशोभित हो रहा था ।

पृष्ठतश्च पुरश्चास्य पद्माः सप्त विकासिनः ।
प्रादुर्बभूवुरुद्गन्धिसान्द्र किञ्जल्करेणवः ॥274॥

जिनकी केसर के रेणु उत्कृष्ट सुगन्धि से सान्द्र हैं, ऐसे वे प्रफुल्लित कमल सात तो भगवान् के आगे प्रकट हुए थे और सात पीछे ।

तथान्यान्यपि पद्मानि तत्पर्यन्तेषु रेजिरे ।
लक्ष्म्यावसथ सौधानि संचारीणीव खाङ्गणे ॥275॥

इसी प्रकार और कमल भी उन कमलों के समीप में सुशोभित हो रहे थे, और वे ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाश मेंचलते हुए लक्ष्मी के रहने के भवन ही हों ।

हेमाम्भोजमयां श्रेणीमलिश्रेणिभिरन्विताम् ।
सुरा व्यरचयन्नेनां सुरराज निदेशतः ॥276॥

भ्रमरों की पंक्तियों से सहित इन सुवर्णमय कमलों की पंक्ति को देवलोग इन्द्र की आज्ञा से बना रहे थे ।

रेजे राजी वराजी सा जिनपत्पङ्कजोन्मुखी ।
आदित्सुखि तत्कान्तिमतिरेका्त् काद्घः स्रुताम् ॥277॥

जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों के सम्मुख हुई वह कमलों की पंक्ति ऐसी जान पड़ती थी मानो अधिकता के कारण नीचे की ओर बहती हुई उनके चरण-कमलों की कान्ति ही प्राप्त करना चाहते हों ।

तर्तिविहार पद्मानां जिनस्योपाङ्घ्रि सा बभौ ।
नभः सरसि संफुल्ला त्रिपञ्चक्कृतप्रभा ॥278॥

आकाश रूपी सरोवर में जिनेन्द्र भगवान के चरणों के समीप प्रफुल्लित हुई वह विहार कमलों की पंक्ति पन्द्रह के वर्ग प्रमाण अर्थात् 225 कमलों की थी ।

उस समय भगवान के दिग्विजय के काल में सुवर्णमय कमलों से चारों ओर से व्याप्त हुआ आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों जिसके कमल फूल रहे हों, ऐसा सरोवर ही हो । इस प्रकार समस्त जगत के स्वामी भगवान वृषभ देव ने जगत को आनन्दमय करते हुए तथा अपने वचनरूपी अमृत से सबको सन्तुष्ट करते हुए समस्त पृथ्वी पर विहार किया था । जनसमूह की पीड़ा हरने वाले जिनेन्द्र रूपी सूर्य ने वचनरूपी किरणों के द्वारा मिथ्यात्वरूपी अहंकार के समूह को नष्ट कर समस्त जगत् प्रकाशित किया था । सुवर्णमय कमलों पर पैर रखने वाले भगवान ने जहाँ-तहाँ से विहार किया वहीं-वहीं के भव्यों ने धर्मामृत रूप जल की वर्षा से परम संतोष धारण किया था ॥279–282॥

(14) दोषरहित तीर्थङ्कर

जो स्वयं धनी होता है वह दूसरों को धन दे सकता है जो स्वयं निर्धन होते हैं वे दूसरों को धन कैसे दे सकते हैं । इसी प्रकार जो स्वयं धर्म, ज्ञान, चारित्र, अहिंसा, सत्य, प्रेम समता के धनी होते हैं वे दूसरों को धर्म ज्ञानादिक वितरण कर सकता है । दूषित वस्त्र को स्वच्छ करने के लिए स्वच्छ जल, सोडा आदि की जरूरत होती है । परन्तु अस्वच्छ वस्त्र को स्वच्छ करने के लिए यदि गन्दी नाली का पानी,

प्रयोग करेंगे तब वह वस्त्र स्वच्छ के अतिरिक्त अस्वच्छ ही अधिक होगा। अतः पतित, पापी, दोषी, कलंकित, जीवों को पावन, पवित्र, मंगल, निर्दोष, अकलंकित धर्मात्मा बनाने के लिए एक अत्यन्त पवित्र, निर्दोष, निष्कलंक धर्म तीर्थ प्रवर्त्तक नेता की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

स्वच्छ दर्पण (आदर्श) से अपने मुख का अवलोकन करके मुख के ऊपर लगे हुए कलंक को हटा सकते हैं, परन्तु अस्वच्छ दर्पण से अपने मुख का यथार्थ अवलोकन नहीं हो सकता है उसके कारण मुख के कलंक को मिटा भी नहीं सकते हैं, परन्तु अस्वच्छ दर्पण से इसी प्रकार जो स्वयं निष्कलंक होकर आदर्श (अनुकरणीय) होता है वह दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकता है। अतः जो धर्म प्रचारक-प्रसारक उन्नयनकारी नेता होते हैं, उनका स्वयं निर्दोष होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है इसलिए धर्म प्रचारक तीर्थंकर 18 दोषों से रहित होते हैं। जो मानव 18 दोषों से रहित होते हैं वे ही आप्त, तीर्थंकर, अरिहन्त भगवान, धर्म संस्थापक, धर्मोपदेशक, केवलि, सत्यद्रष्टा, परम ब्रह्म परमात्मा होते हैं। भगवान के स्वरूप बताते हुए महान तार्किक दार्शनिक महान प्राज्ञ समंतभद्र स्वामी ने निम्न प्रकार से वर्णन किया है—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥5॥

जो वीतरागी (मोह, ममता, आसक्ति से रहित), सर्वज्ञ (चराचर विश्व को जानने वाला), हितोपदेशी (कल्याणकारी उपदेश देने वाला) होते हैं वे ही यथार्थ से देव कहलाते हैं किन्तु, जो रागी (मोही, ममत्व वाला), असर्वज्ञ और अहितोपदेशी होते हैं वे यथार्थ से देव नहीं हो सकते।

पुनः आचार्य श्री ने सच्चे देव का लक्षण बताते हुए दोषरहितता निम्न प्रकार बताये हैं—

क्षुत्पिपासाजरातङ्क-जन्मान्तक-भय-स्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च, यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥6॥

(1) भूख, (2) प्यास, (3) बुढ़ापा, (4) रोग, (5) जन्म, (6) मरण, (7) भय, (8) गर्व, (9) राग, (10) द्वेष, (11) मोह, (12) आश्चर्य, (13) अरति, (14) खेद, (15) शोक, (16) निद्रा, (17) चिंता, (18) स्वेद। इन 18 दोष से रहित होता है। उसे आप्त (धर्मोपदेशक, तीर्थंकर) कहते हैं—

जन्म जरा तिरखा क्षुधा, विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निद्रा चिन्ता स्वेद ॥
राग द्वेष अरु मरण श्रुत, ये अष्टादश दोष।
नाहिं होत अरिहन्त के सो छवि लायक मोष ॥

(1) भूख—

असातावेदनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से तथा आध्यात्मिक अनंत सुख का भोग सतत करने से तीर्थंकर भगवान दीर्घकालीन तीर्थंकर अवस्था में कभी भी रोटी, भात मिष्ठान आदि का भोजन नहीं करते हैं।

(2) प्यास—

असाता वेदनीय (पाप) कर्म के उदय से प्यास लगती है। परन्तु तीर्थंकर भगवान के समस्त पाप कर्म क्षीण, शक्तिहीन होने के कारण दीर्घ तीर्थंकर अवस्था में भी, तीर्थंकर भगवान को प्यास नहीं लगती है।

भूख तथा प्यास की बाधा से जीव को कष्ट होता है। नीतिकारों ने बताया है कि क्षुधा के समान रोग तथा वेदना दूसरी नहीं है। क्षुधा से दुःख के साथ-साथ शक्ति भी क्षीण हो जाती है। यदि भगवान भी भोजन करते हैं और पानी पीते हैं तब इससे सिद्ध हुआ कि भगवान क्षुधा प्यास के कारण दुःखी हैं और जो दुःखी होता है वह भगवान नहीं हो सकता। भोजन के लिए परावलम्बी भी होना पड़ता है और जो परावलम्बी होता है वह भगवान नहीं हो सकता। भगवान् अक्षय, अनन्त, सुख-शक्ति ज्ञान, आत्मवैभव के धनी होते हैं वे पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं।

(3) बुढ़ापा—

वृद्धत्त्व सांसारी जीव का एक स्वाभाविक प्राकृतिक रोग है। वृद्धत्त्व के कारण शारीरिक, मानसिक शक्ति क्षीण हो जाती है। परन्तु तीर्थंकर के परम औदारिक शरीर में वृद्धत्त्व अवस्था नहीं आती है। लक्ष करोड़ अवधि वर्ष तक वे किशोर अवस्था के समान रहते हैं।

(4) रोग—

रोग असाता वेदनीय कर्म के उदय से होता है। परन्तु तीर्थंकर भगवान (अरिहंत) साक्षात् सातिशय पुण्य के जीवन्त मूर्ति स्वरूप होने के कारण असाता वेदनीयजनित रोग नहीं होता है।

(5) जन्म—

सञ्चित कर्म का उपभोग करने के लिए एक नवीन अवस्था को धारण करना पड़ता है उस नवीन अवस्था का धारण करना ही जन्म है। अरिहंत भगवान् आध्यात्मिक पुरुषार्थ के माध्यम से सञ्चित कर्म को निःशेष कर लेते हैं जिससे उनको पुनर्जन्म धारण नहीं करना पड़ता है।

(6) मरण—

प्रत्येक जीव मरण से अत्यन्त भयभीत होते हैं इसलिए मरण एक भयंकर दुःखदायी रोग है। संसारी जीव के आयु कर्म समाप्त होना ही मरण है। मरण के पश्चात् पुनर्जन्म संसारी जीव, अवशेष कर्म संस्कार से प्राप्त करते हैं। पुनर्जन्म सहित मरण ही यथार्थ रूप से मरण है पुनर्जन्म रहित मरण को मरण नहीं है किन्तु निर्वाण (मोक्ष) है। अरहंत का निर्वाण होता है किन्तु मरण नहीं होता है।

(7) भय—

भय कर्म के उदय से संसारी जीव को भय उत्पन्न होता है। तीर्थङ्कर भगवान् आध्यात्मिक वीर्य से भय उत्पादक भय कर्म को समूल नाश करने के कारण उनको किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता है। शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक

दुर्बलता से तथा पाप प्रवृत्ति के कारण अन्तरंग में भय का संचार होता है। परन्तु तीर्थङ्कर भगवान अनन्त शक्ति के पुञ्ज स्वरूप तथा चारित्र एवं पुण्य के धनी होने से तीर्थंकर को भय उत्पन्न होने का प्रशन ही उत्पन्न नहीं होता है।

(8) **गर्व**—

मान कषाय कर्म के उदय से एवं क्षुद्रता के कारण गर्व उत्पन्न होता है। तीर्थङ्कर भगवान आध्यात्मिक शक्ति से मान कर्म का मर्दन (क्षय) करके महान् विजयी होते हैं जिससे गर्व रूप क्षुद्रता उनको स्पर्श भी नहीं कर सकती है।

(9) **राग**—

मोहनीय कर्म तथा चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से पर वस्तु के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है इस आसक्ति को ही राग कहते हैं। राग आग के समान आत्मा को भस्मीभूत करता है। आध्यात्मिक ध्यानाग्नि से तीर्थंकर भगवान राग उत्पादक कर्म को ही भस्मसात कर लेते हैं जिससे उनके अन्तःकरण में राग उत्पन्न नहीं होता है।

(10) **द्वेष**—

मोहनीयकर्म तथा क्रोध कषाय के उदय से स्व-पर को कष्टदायक द्वेष भाव उत्पन्न होता है। तीर्थङ्कर भगवान द्वेष को अपना परम शत्रु मानकर द्वेष उत्पादक कर्म का समूल विनाश कर देते हैं जिससे वे द्वेषरूपी दोष से निर्दोष हो जाते हैं।

(11) **मोह**—

मोहनीय कर्म उदय से मोह उत्पन्न होता है। मोह जीव को मोहित करके जीवों को महान दुःख देता है तीर्थंकर भगवान संसार का मूल कारण मोह को मानकर उसका समूल नाश कर देते हैं जिससे उनके हृदय में मोह अंकुरित नहीं होता है।

(12) **आश्चर्य**—

अज्ञानता के कारण आश्चर्य उत्पन्न होता है। तीर्थङ्कर भगवान त्रिकालवर्ती विश्व के चर, अचर वस्तुओं की पर्यायों को युगपत् जानने के कारण उनको किसी भी विषय में आश्चर्य नहीं होता है।

(13) **अरति**—

अरति नोकषाय कर्म के उदय से दूसरों के प्रति जो अनादर, घृणा रूप भाव होता है उसको अरति कहते हैं। तीर्थङ्कर भगवान ध्यानाग्नि से अरति कर्म को समूल भस्म करने के कारण विकार रूप अरति भाव उनमें प्रगट नहीं होता है।

(14) **खेद**—

वीर्यान्तराय कर्म एवं असाता वेदनीय कर्म के उदय से खेद उत्पन्न होता है। तीर्थङ्कर भगवान दोनों कर्मों का नाश कर देते हैं, इसलिए उनको खेद उत्पन्न नहीं होता है।

(15) **शोक**—

शोक नोकषाय कर्म के उदय से दुःख, संताप रूप शोक उत्पन्न होता है। नो-कषाय का अभाव होने से तीर्थङ्कर को शोक उत्पन्न नहीं होता।

(16) निद्रा—

निद्रा नोकषाय कर्म के उदय से तथा आलस्य और क्लान्ति (थकावट) को दूर करने के लिए संसारी जीव निद्रा की शरण लेते हैं परन्तु तीर्थंकर भगवान निद्रा नोकषाय का समूल विनाश करने से तथा अनन्त शक्ति सम्पन्न होने से निद्रा नहीं लेते हैं।

(17) चिन्ता—

संसारी जीव को पाप कर्म के उदय से इष्ट, वियोग, अनिष्ट, संयोग, शारीरिक रोग आदि के कारण चिन्ता होती है। परन्तु तीर्थंकर (अरहंत) अवस्था में सातिशय अमृत स्थानीय पुण्य कर्म के उदय से तथा मोह-माया-ममत्व आदि के अभाव से चिंता नहीं होती है।

(18) स्वेद—

स्वेद, शारीरिक मल है। तीर्थंकर भगवान का शरीर परम औदारिक रूप परिणमन करता है जो कि शुद्ध स्फटिक के समान होता है। परिश्रम से भी तथा थकावट से भी स्वेद (पसीना) निकलता है। तीर्थंकर भगवान के गमनागमन सहन होने से तथा अनन्त शक्ति सम्पन्न होने से स्वेद (पसीना) नहीं आता है।

विश्व धर्म-सभा की रचना (समवसरण)

कठोर आध्यात्मिक साधन के फलस्वरूप तीर्थंकर को विश्व-प्रकाशक, आध्यात्मिक ज्योति, पूर्ण अतीन्द्रिय केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

जादे केवलणाणे परमोरालं जिणाण सव्वाणं।
गच्छदि उवरिं चावा पंचसहस्साणि वसुहादो ॥713॥

ति० प० भाग–2 अ० 4 पृ० 201

केवल ज्ञान के उत्पन्न होने पर समस्त तीर्थंकरों का परमौदारिक शरीर पृथ्वी से पाँच हजार धनुष प्रमाण ऊपर चला जाता है।

भुवणत्तयस्स ताहे अइसयकोडीअ होदि पक्खोहो।
सोहम्मपहुदिइंदाणं आसणाइं पि कंपंति ॥714॥

उस समय तीनों लोकों में अतिशय क्षोभ उत्पन्न होता है और सौधर्मादिक इन्द्रों के आसन कंपायमान होते हैं।

तक्कंपेणं इंदा संखुग्घोसेण भवणवासिसुरा।
पडहरवेहिं वेंतर सहिणिणादेण जोइसिया ॥715॥
घंटाए कप्पवासी णाणुप्पत्तिं जिणाण णादूणं।
पणमंति भत्तिजुत्ता गंतूणं सत्त वि कमाओ ॥716॥

आसन के कंपित होने से इन्द्र, शंख के उद्घोष से भवनवासी देव, पटह के शब्दों से व्यन्तर देव, सिंहनाद से ज्योतिषी देव और घंटा के शब्द से कल्पवासी देवों तीर्थंकरों के केवल ज्ञान की उत्पति को जानकर भक्तियुक्त होते हुए उसी दिशा में सात पैर जाकर प्रणाम करते हैं।

अहमिंदा जे देवा, आसणकंपेण तं वि णादूणं ।
गंतूण तेत्तियं चिय तत्थ ठिया ते णमंति जिणे ॥717॥

जो अहमिन्द्र देव हैं, वे भी आसनों के कंपित होने से केवलज्ञान की उत्पत्ति को जानकर और उतने ही (सात पैर) आगे जाकर वहाँ स्थित होते हुए जिन भगवान को नमस्कार करते हैं।

ताहे सक्काणाए जिणाण सयलाण समवसरणाणि ।
विक्किरियाए धणदो विरएदि विचित्तरूवेहिं ॥718॥

उस समय सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर, विक्रिया के द्वारा सम्पूर्ण तीर्थंकरों के समवसरणों को विचित्र रूप से रचता है।

गंधकुटी—

तीसरी पीठिकाओं के ऊपर एक-एक गंधकुटी होती हैं। यह गंधकुटी चमर, किंकिणी, वंदनमाला और हीरादिक से रमणीय, गोशीर, मलयचंदन और कालागरु इत्यादिक धूपों के गंध से व्याप्त, प्रचलित रत्नों के दीपकों से सहित तथा नाचती हुई विचित्र ध्वजाओं की पंक्तियों से संयुक्त होती हैं। उस गंधकुटी की चौड़ाई और लम्बाई भगवान वृषभनाथ के समवशरण में 600 धनुष प्रभाव थी। तत्पश्चात् श्री नेमिनाथ पर्यन्य क्रम से उत्तरोत्तर पांच का वर्ग अर्थात् पच्चीस-पच्चीस धनुष कम होती गयी हैं। भगवान पार्श्वनाथ के समवसरण में गंधकुटी का विस्तार दो से विभक्त एक सौ पच्चीस धनुष और वर्धमान के दुगुणित पच्चीस अर्थात् पचास धनुष प्रमाण था। ऋषभ जिनेन्द्र के समवसरण में गंधकुटी की ऊंचाई नौ सौ धनुष प्रमाण थी। फिर इसके आगे क्रम से नेमिनाथ तीर्थंकर पर्यंत विभक्त मुख प्रमाण ($900 \div 24 = \frac{75}{2}$) से हीन होती गयी है। पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के समवसरण में गंधकुटी की ऊँचाई चार से विभक्त तीन सौ पचहत्तर धनुष और वीरनाथ जिनेन्द्र के पच्चीस कम सौ धनुष प्रमाण थी।

सिंहासन—

गंधकुटियों के मध्य में पादपीठ सहित, उत्तम स्फटिक मणियों से निर्मित और घंटाओं के समूहादिक से रमणीय सिंहासन होते हैं। गंध रत्नों से खचित उन सिंहासनों की ऊँचाई तीर्थंकरों की ऊँचाई के ही योग्य हुआ करती है।

अरहन्तों की स्थिति सिंहासन से ऊपर—

चउरंगुलंतराले उवरिं सिंहासणाणि अरहंता ।
चेट्ठंति गयण-मग्गे लोयालोयप्पयास-मत्तंडा ॥904॥ पृ० 278

लोक-अलोक को प्रकाशित करने के लिए सूर्य सदृश भगवान अरहन्त देव उन सिंहासनों के ऊपर आकाश मार्ग में चार अंगुल के अंतराल से स्थित रहते हैं। ॥904॥

तीर्थंकर भगवान् पूर्णरूप से संसार शरीर भोग-उपभोग, सांसारिक, भौतिक वस्तु, धन-संपत्ति वैभव से विरक्त निर्मम, उदासीन, उपेक्षा होने के कारण वे देवों द्वारा

रचित अत्यन्त वैभवपूर्ण विश्व के अद्वितीय, अनुपम कला-कौशल, विभिन्न बहुमूल्य रत्नों से निर्मित, समवसरण को स्पर्श तक नहीं करते हैं। इतना ही नहीं, गंधकुटी में स्थित सिंहासन को भी स्पर्श करके विराजमान नहीं होते हैं। वे उस सिंहासन से चार अंगुल अन्तराल से आकाश में बिना आधार स्थिर रहते हैं।

तीर्थंकर भगवान् विश्व धर्म सभा समवसरण में विराजमान होकर विश्व-प्रेम, मैत्री, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकांत, स्याद्वाद, विश्व का सत्य-स्वरूप, धर्म का रहस्य, रत्नत्रय, धर्म, षट-द्रव्य, सप्त-तत्त्व, नव-पदार्थ, संसार तथा मोक्ष-कारण, गृहस्थ धर्म, मुनि-धर्म, सच्चे नागरिकों के कर्त्तव्य (अविरत, चतुर्थ गुण स्थानवर्ती जीवों के कर्त्तव्य) आदि का सूक्ष्म तथा पूर्ण वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण उपदेश करते हैं। तीर्थंकर भगवान् सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के लिए उपदेश करते हैं। उनका उपदेश संकीर्ण मनोभाव से प्रेरित होकर क्षुद्र सांप्रदायिक नहीं होता है। उनका उपदेश कुछ सीमित वर्गों के लिए नहीं होता है। उनके उपदेश अहिंसा, विश्व मैत्री, प्रेम, सौहार्द्र, सुख-शान्ति के लिए होता है। वे स्वयं अहिंसा, सत्य, प्रेम, करूणा की जीवन्त मूर्ति होते हैं। अंतरंग, बहिरंग और उपदेश अहिंसामय, समतामय, सत्यमय होने के कारण सत्य दृष्टिकोण रखने वाले भव्य जीव, उनके उपदेश सुनने के लिए बहुत दूर दूरान्तर से आर्कषित होकर आते हैं। उनकी धर्म सभा में राजा-महाराजा, सम्राट के साथ-साथ दीन-हीन गरीब भी एक आसन में किसी प्रकार के भेद-भाव से रहित होकर प्रेम से बैठकर धर्मामृत पान करते हैं। उस विश्व धर्म सभा में राजरानी, साम्राज्ञी, पट्टमहिषी, दीन, दुःखिनी, ग्रामीण, स्त्री भी समासन में भेद-भाव भूलकर बैठते हैं। इतना ही नहीं, उस धर्मामृत पान करने के लिए अबोध पशु-पक्षी भी आर्कषित होकर ग्राम, नगर, जंगल से आकर धर्मसभा में स्वभोग्य स्थान में बैठकर धर्मामृत पान करते हैं। जन्म-जात परस्पर वैरत्व रखने वाले पशु-पक्षी भी उस अहिंसामय परिसर में निर्वैरत्व होकर, निर्भय होकर, प्रेम प्रीति से एक साथ बैठते हैं। आचार्य जिनसेन स्वामी ने हरिवंश पुराण में समवसरण का वर्णन करते हुए हिंसक पशु-पक्षियों के बारे में निम्न प्रकार वर्णन किये हैं—

ततोऽहिन कुलेभेन्द्रहर्यश्वमहिषादयः।
जिनानुभाव सम्भूतविश्वासाः शमिनो बभुः ॥87॥

हरि० पु० अ०2 पृ० 19

और उनके बाद द्वादश कोष में जिनेन्द्र भगवान के प्रभाव से जिन्हें विश्वास उत्पन्न हुआ था तथा जो अत्यन्त शांतचित के धारक थे, ऐसे सर्प, नेवला, गजेन्द्र, सिंह, घोड़ा और भैंस आदि नाना प्रकार के तिर्यञ्च बैठे थे ॥87॥

विश्व में विभिन्न काल में, विभिन्न देश में, विभिन्न सम्प्रदाय में बड़े-बड़े धर्म प्रचारक, धर्मात्मा, देवदूत, पैगम्बर हो गये हैं। वे लोग युगपुरूष, धर्म, क्रान्तिकारी, धर्मोपदेशक, प्रचारक एवं प्रसारक हुए हैं। वे तत्कालिक जीव जगत् को परिस्थिति उद्बोधन, पूत-पवित्र किये थे। उससे पतित से पतित मानव भी पावन हो गये हैं और कुछ पशु-पक्षी भी प्रभावित हुए हैं। परन्तु अभी तक हिन्दू, बौद्ध, क्रिस्ट,

मुसलमान आदि कोई भी धार्मिक साहित्य में मेरे देखने में कहीं पर नहीं आया है कि जन्म-जात वैर, विरोध, भोज्य-भक्ष संबंध रखने वाले पशुपक्षी एक साथ मनुष्य के साथ बैठकर उपदेश सुने हों। तीर्थंकर के पादमूल में इस प्रकार जन्मजात बैर-विरोध को रखने वाले अनेक पशु-पक्षी एक साथ प्रेम से बैठकर उपदेश सुनते हुए बताते हैं कि विश्व में एक ही अद्वितीय पूर्ण अहिंसा के आराधक, प्रचार-प्रसारक तीर्थंकर अरिहन्त हैं। क्योंकि "अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निद्धौ बैर-त्यागः" जो पूर्ण अहिंसा के आराधक, प्रचार-प्रसारक होते हैं उन्हीं के सान्निध्य में दूसरों के बैर भाव भी विलीन हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्य के सान्निध्य से अंधकार विलीन हो जाता है।

समवसरण में वन्दनारत जीवों की संख्या

जिणवंदणापयट्टा पल्लासंखेज्जभागपरिमाणा।
चेट्ठंति विविहजीवा एक्केक्के समवसरणेसुं ॥938॥

ति० प० भाग–2, अ० 4

एक-एक समवसरण में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण विविध प्रकार के जीव जिनदेव की वन्दना में प्रवृत होते हुए स्थित रहेते हैं ॥929॥

अवगाहन शक्ति की अतिशयता

कोट्ठाणं खेत्तादो जीणक्खेत्तंफलं असंखगुणं।
होदूण अपुट्ठत्ति हु जिणमाहप्पेण ते सव्वे ॥939॥

समवशरण के कोठों के क्षेत्र से यद्यपि जीवों का क्षेत्रफल असंख्यातगुणा है तथापि वे सब जीव जिनदेव के माहात्म्य से एक दूसरे से अस्पृष्ट रहते हैं ॥930॥

यद्यपि समवसरण का क्षेत्रफल अधिक है परन्तु समवसरण के मध्य में स्थित गंधकोटि उत्कृष्ट से छह सौ धनुष एवं जघन्य से पचास धनुष प्रमाण है। इसलिए गंधकोटि का क्षेत्रफल समवसरण के क्षेत्रफल से बहुत कम है। गंधकोटि में पूर्णवर्णित बारह सभाओं में मनुष्य, पशु-पक्षी, देव बैठकर एक साथ उपदेश सुनते हैं। उनकी संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण **(असंख्यात) अर्थात् असंख्यात हैं।** असंख्यात जीवों के बैठने योग्य क्षेत्र का क्षेत्रफल बारह सभा के क्षेत्रफल से असंख्यातगुणा कम है। भौतिक विज्ञान, क्षेत्रगणित, अंकगणित के सिद्धान्त के अनुसार बैठने योग्य क्षेत्र का क्षेत्रफल एवं बैठने वाले जीवों के आसन का क्षेत्रफल समान होना चाहिए। परन्तु यहां पर बैठने योग्य क्षेत्र के क्षेत्रफल से बैठने वाले जीवों का क्षेत्रफल असंख्यात गुणा है। यहाँ पर स्वभाविक प्रश्न होता है कि, कम क्षेत्रफल में अधिक जीव कैसे बैठ सकते हैं? इसका उत्तर देते हुए आचार्य श्री ने बताया है कि यह जिनेन्द्र भगवान के अलौकिक महात्म्य का फल है।

एक छोटे से कैमरे में हजारों मनुष्यों की प्रतिच्छाया अंकित हो जाती है। मनुष्यों का क्षेत्रफल हजारों वर्गमीटर हो सकता है। परन्तु कैमरा के लेन्स का क्षेत्रफल कुछ सेन्टीमीटर होता है। जिस प्रकार एक बहुत कम क्षेत्र विशिष्ट लेन्स में अधिक क्षेत्रफल में स्थित एवं अधिक क्षेत्रफल विशिष्ट मनुष्यों की प्रतिच्छाया आ जाती है।

इसका कारण लेन्स के कांच का वैशिष्ट्य है। सामान्य कांच में इस प्रकार प्रतिबिम्ब नहीं आ सकता है उसी प्रकार सामान्य मनुष्यों के कारण उनके क्षेत्र में अनेक जीव कम क्षेत्र में नहीं रह सकते हैं परन्तु विशिष्ट अलौकिक प्रतिभासम्पन्न महापुरुषों के कारण अधिक जीव, कम क्षेत्रफल में रहने में बाधा नहीं आती है। पूर्व वर्णित अक्षीण क्षेत्रऋद्धि सम्पन्न मुनिवर जिस छोटी सी गुफा में रहते हैं उस गुफा में अनेक जीव बिना बाधा से रह सकते हैं। जब एक सामान्य ऋद्धिधारी मुनीश्वर के महात्म्य से ऐसा होना सम्भव है तब क्षायिक नवलब्धि सम्पन्न विश्व के सर्वोत्कृष्ट महापुरूषों के निमित्त से कम क्षेत्र में अधिक जीव रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

प्रवेश-निर्गमन प्रमाण

संखेज्ज-जोयणाणि, बाल-प्पहुदी पवेस-णिग्गमणे।
अंत्तोमुहुत्त-काले, जिण-माहप्पेण गच्छंति ॥940॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान् के महात्म्य से बालक-प्रभृति जीव समवसरण में जीव प्रवेश करने अथवा निकलने में अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर संख्यात योजन चले जाते हैं ॥940॥

समवसरण में कौन नहीं जाते ?

मिच्छाइट्ठि-अभव्वा, तेसु असण्णी ण होंति कइयावि।
तह य अणज्झवसाया, संदिद्धा विविह-विवरीया ॥941॥

अर्थ—समवसरण में मिथ्यादृष्टि, अभव्य और असंज्ञी जीव कदापि नहीं होते तथा अनध्यवसाय से युक्त, सन्देह से संयुक्त और विविध प्रकार की विपरीतताओं वाले जीव भी नहीं होते ॥941॥

समवसरण में रोगादि का अभाव

आतंक-रोग-मरणुप्पत्तीओ वेर-काम-बाधाओ।
तण्हा-छुह-पीड़ाओ, जिण-माहप्पेण ण वि होंति ॥942॥

अर्थ—जिन भगवान् के महात्म्य से आतङ्क, रोग, मरण, उत्पत्ति, वैर, काम-बाधा तथा पिपासा और क्षुधाकी पीड़ाएँ वहाँ नहीं होतीं ॥942॥

समवसरण में आने वाले दूर-दूर के भव्य श्रद्धालु धर्मात्मा, अबाल-वृद्ध-वनिता भगवान् की अलौकिक आध्यात्मिक प्रेरणा से प्रेरित होकर एवं भगवान् के महात्म्य से प्रभावित होकर संख्यात योजन दूरी को केवल अन्तर्मुहूर्त में (48 मिनट के मध्य में) पार करके भगवान् की आत्मकल्याणकारी वाणी को सुनने के लिये समवसरण में पहुँच जाते हैं।

जिस प्रकार सूर्य के पास अंधकार का प्रवेश होना असम्भव है उसी प्रकार धर्म-सूर्य तीर्थंकर के समवसरण में दूषित, संदेहपूर्ण, मिथ्याभिप्राय:युक्त, हिताहित-विचारहीन (असंज्ञी), श्रद्धाहीन, विभिन्न कुटिल अभिप्राय सहित जीव पहुँचना असम्भव है। तीर्थंकर भगवान् जगत् हिताकांक्षी, विश्व बन्धु होने के कारण वे 'सर्वजनहिताय-सर्वजन सुखाय' धर्मोपदेश देते हैं। विश्व धर्म सभा में पूर्व वर्णितानुसार देव-दानव,

मानव पशु तक के लिये निर्बाध रूप से सदाकाल द्वार खुला है। कोई भी जीव के लिये कभी भी प्रतिबन्धक नहीं है। परन्तु जिस प्रकार स्वभावतः सूर्य के पास अन्धकार का प्रवेश नहीं हो पाता है, उसी प्रकार मोहान्धकारी जीव का प्रवेश स्वभावतः समवसरण में नहीं होता है। कोटिरस में सूर्य किसी के प्रति भेदभाव नहीं रखता है तो भी उल्लू को सूर्य का दर्शन नहीं होता, उसी प्रकार बाह्य आकार-प्रकार में मनुष्य, देव, पशु होते हुए भी जो अंतरंग में उल्लू के समान गुणद्वेषी दोष रागी होते हैं उन्हीं को केवल ज्ञान रूपी सूर्य का दर्शन नहीं होता है। जिस प्रकार गन्ना स्वभावतः मधुर होते हुए भी ऊँट को गन्ना तिक्त लगता है परन्तु नीम स्वभावतः तिक्त होते हुए भी ऊँट को मीठा लगता है। पक्का केला स्वभावतः सुगन्धित, सुस्वादिष्ट होते हुए भी सुअर को रुचिकर नहीं लगता, परन्तु मल को शोध करके खाएगा। उसी प्रकार भाव-कलुषित जीव समवसरण में धर्मप्रति अरुचि के कारण नहीं जाता है। इस सन्दर्भ में एक प्रेरणास्पद रुचिकर उदाहरण निम्न में दे रहा हूँ।

जब अहिंसा के अवतार, अन्तिम तीर्थंकर महावीर भगवान् केवल बोध प्राप्त करने के बाद पुराण इतिहास प्रसिद्ध सांस्कृतिक नगरी राजगृह के निकटस्थ विपुलाचल पर्वत पर विश्वधर्म सभा (समवसरण) में विराजमान होकर अहिंसा, सत्य, विश्वमैत्री, समता आदि का अमर संदेश विश्वमात्र को दे रहे थे तब उनके अमृतमयी वाणी का आकण्ठ पान करने के लिये असंख्यात देव-दानव, मानव, वैर-विरोध हिंसक पशु तक प्रेम-मैत्री भाव से एक साथ समवसरण में भगवान् के मंगलमय अभय चरण-कमल के समीप बैठे हुए थे।

जब देव लोगों को अवगत हुआ कि महावीर भगवान् की मौसी उपदेश सुनने के लिये नहीं आई है तो कुछ देव महावीर भगवान् की मौसी को समवसरण में लाने के लिये मौसी के पास पहुँचे। मौसी के पास पहुँचकर बोले—महावीर भगवान का दिव्य संदेश सुनने के लिये आप भी चलिये। तब मौसी पूछती है—कौन-सा महावीर भगवान् है? देव लोगों ने उत्तर दिया—आपके ही वर्द्धमान, महावीर हैं। देवों के उत्तर सुनकर बुढ़िया मौसी घृणा एवं द्वेष से बोलती है, वही पगला महावीर जो कि, राजवैभव, भोग-उपभोग, ठाट-बाट छोड़कर नंगा होकर मारा-मारा जंगल में फिरता है। देव लोग बोले—महावीर भगवान्, आत्मोद्धार और जगत उद्धार के लिये समस्त बन्धनों को काट कर आत्मसाधन के माध्यम से वर्तमान तीन-लोक के पूज्य अरिहन्त तीर्थंकर बन चुके हैं। उनसे प्रभावित होकर विश्व की समस्त शक्तियाँ उनके मंगलमय चरण-कमल में नम्र रूप से नतमस्तक हैं। उनके विश्व कल्याणकारी दिव्य संदेश से देव, दानव, मानव यहाँ तक की पशु भी अणुप्राणित उद्बोधित हैं। उनके दिव्य संदेश एवं सानिध्य मात्र से पतितपावन बन जाते हैं, जिस प्रकार पारसमणि स्पर्श से लोहा भी स्वर्ण रूप में परिणमन हो जाता है। देवों की बात सुनकर दूषित मन वाली बुढ़िया मौसी बोलती है कि, जाओ-जाओ देखे हैं, अभी कल का छोकरा है मेरे सामने ही

पैदा हुआ और अभी पगले के समान वैभव त्याग कर उपदेशक बन गया है। जाओ-जाओ, मैं नहीं आने वाली हूँ। तब देव लोग सोचे—इनको जबरदस्ती लेकर जाना चाहिये। जब देव लोग उनको ले जाने के लिये बाध्य किये, तब धर्म के प्रति द्वेष रखने वाली बुढ़िया मौसी दो सुई लेकर अपनी दोनों आँखें फोड़ डालती है, पुनः बोलती है लो अभी जबरदस्ती आप लोग मुझे लेकर समवसरण जाने पर भी मेरी आँख के अभाव से मैं दीन-हीन पगले महावीर को नहीं देखूंगी। देव लोग इस घटना से पश्चात्ताप कर एवं कुछ नवीन संदेश प्रेरणा लेकर वापिस चले गये।

उपर्युक्त उदाहरण से सिद्ध होता है कि समवसरण का द्वार सबके लिये मुक्त होने पर भी दूषित मन वाले मिथ्याग्रही, अभव्य, संदेहयुक्त जीवादि स्वभाव से ही समवसरण में नहीं जाते हैं।

पूर्व में समवसरण का सविस्तार वर्णन किया गया है। समवसरण के मध्य में स्थित गंधकुटी में बारह सभा होती हैं, जिसमें मनुष्य, देव, पशु आदि प्रेम से एक साथ अपने-अपने योग्य स्थान पर बैठते हैं। उस बारह सभा के मध्य में जगतोद्धारक, धर्मोपदेशक तीर्थंकर भगवान् सिंहासन के ऊपर चार अंगुल अधर में विराजमान होते हैं। गंधकुटी के बाह्य विभिन्न भाग में नाट्यशाला, प्रेक्षागृह, उपवन आदि होते हैं। जो सम्यक् दृष्टि भव्य दूषित मनोभाव से रहित निर्मल परिणाम वाले संज्ञी पन्चेन्द्रिय जीव होते हैं, वे गंधकुटी में प्रवेश करके दिव्य अमर संदेश सुनते हैं। परन्तु अनन्य जो जीव समवसरण में जाते हैं वे केवल गंधकुटी के बाह्य भाग में नृत्य, गीत, संगीत, नाटक आदि देखते हैं, कोई-कोई वन-उपवन में क्रीड़ा-विनोद करते हैं। कोई-कोई कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर आनन्द-प्रमोद करते हैं। इस प्रकार धर्म द्वेषी, दूषित मन वाले जीव समवसरण में जाते हुए भी गंधकुटी में जाकर भी दिव्य उपदेश नहीं सुनते, परन्तु बाह्य भाग में मजा-मजलिश क्रीड़ा-राग-रंग में रम जाते हैं। परन्तु जो धर्म-प्रेमी सत्य-जिज्ञासु, आत्म-कल्याणकारी मुमुक्षु जीव होते हैं वे बाह्य राग-रंग में रमते नहीं। गंधकुटी में जाकर अमृतवाणी का पान करते हैं। समवसरण के वैभव मानस्तम्भ-चैत्यवृक्ष आदि के दर्शन के बाद यदि दूषित मनोभाव दूर होकर, निर्मल मनोभाव जागृत होकर, अंहकार दूर हो जाता है तब वह यथार्थ दृष्टि वाला होकर गंधकुटी में प्रवेश करके उपदेशामृत का पान कर सकता है।

गंधकुटी में स्थित कोई जीव के अंतस्थल में यदि कलुषित मनोभाव तीव्र रूप से जागृत हो जाता है तब भी वे गंधकुटी में नहीं रह सकता है। यदि कलुषित मनोभाव शीघ्रातिशीघ्र मन्द होकर पुनः निर्मल मनोभाव जागृत हो जाता है तब वह गंधकुटी में रह सकता है अन्यथा दीर्घकाल तक यदि तीव्र दूषित मनोभाव मन में जागृत रहता है तब वह निश्चित रूप से स्वयं में स्वाभाविक रूप से गंधकुटी से बाहर निकल जाता है। जिस प्रकार आँख में धूलकण गिरने के बाद जब तक धूलकण बाहर नहीं निकल जाता, तब तक आँख में आँसू निकलते रहते हैं और धूलकण निकलने के बाद

आँसू स्वयं बन्द हो जाते हैं। उसी प्रकार दूषित मन वाले जब तक गंधकुटी में रहते हैं तब तक अंतरंग-बहिरंग से प्राकृतिक रूप से प्रतिक्रिया चलती है जिससे वह गंधकुटी को छोड़कर बाहर निकल आता है।

जैसे—जो तत्त्व समुद्र में घुल-मिलकर समुद्र रूप में परिणमन नहीं करता है उसको समुद्र स्वीकार नहीं करता है। उस विरोधी तत्त्व को बाहर फेंक देता है। उसी प्रकार जो जीव अन्तःकरण से, निर्मल भाव से सत्य धर्म को स्वीकार न करके दूषित मनोभाव के कारण सत्य धर्म विरोधी तत्त्व रूप में गंधकुटी में रहता है, उसको स्वभावतः सत्य धर्म स्वीकार नहीं करता, उसे बाहर फेंक देता है।

तीर्थंकर भगवान् राग-द्वेष से रहित होने के कारण किसी के ऊपर ममत्व नहीं करते तथा द्वेष भी नहीं करते हैं। परन्तु जैसे वृक्ष के नीचे आने वाले संतप्त पथिक को वृक्ष शीतल छाया दे देता है और नहीं आने वाले को नहीं देता है उसी प्रकार तीर्थंकर भगवान् भी संसारताप नाश करने वाली पवित्र छाया के नीचे आने वाले (दिव्य संदेश के अनुसार चलने वाला) संसार का ताप नाश करके चिरकाल सुख-शान्ति प्राप्त करते हैं। जो पवित्र छाया के नीचे नहीं आते, वे संसार के ताप भोगते रहते हैं।

पर्यावरण, परिस्थिति, देश, काल, भाव आदि का सूक्ष्म, स्थूल, प्रगट एवं अप्रगट परिणाम दूसरे के ऊपर भी पड़ता है। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में वर्षा, शीत ऋतु में शीत, ग्रीष्म ऋतु में उष्णता का प्रभाव पड़ता है। समुद्र तट में विशेष शीत एवं उष्णता की बाधा नहीं होती परन्तु समशीतोष्ण परिस्थिति रहती है। वातानुकूल प्रकोष्ठ में तीव्र शीत एवं उष्ण की बाधा नहीं होती है। समशीतोष्ण परिस्थिति रहती है। उसी प्रकार समवसरण (गंधकुटी) में विशेष एक अलौकिक, आध्यात्मिक परिसर के कारण तथा अहिंसा, करुणा, प्रेम, सत्य की जीवन्त मूर्तिस्वरूप विश्व-उद्धारक तीर्थंकर के आध्यात्मिक अद्भुत महात्म्य से गंधकुटी में स्थित जीवों को आतंक, रोग, मरण, जन्म, वैर, यौनबाधा, तृष्णा और क्षुधा की बाधाएँ भी होती हैं। उपर्युक्त बाधाएँ पाप, कर्म तथा दूषित मनोभाव से होती हैं परन्तु तीर्थंकर के प्रभाव से गंधकुटी में स्थित जीवों के मन में अहिंसा, प्रेम, मैत्री, वैराग्य आदि की पवित्र मंदाकिनी धारा बहती है जिससे उपर्युक्त बाधाएँ नहीं होती हैं।

अष्टमहाप्रातिहार्य

(1) सिंहासन—

तस्या मध्ये सैहं पीठं नानारत्नव्राताकीर्णम्।
मेरोः शृङ्गं न्यक्कुर्वाणं चक्रे शक्रादेशाद् वित्तेट् ॥25॥

आ० पु० अ० 13–पृ० 542

उस गंधकुटी के मध्य में धनपति ने एक सिंहासन बनाया था जो कि अनेक प्रकार के रत्नों के समूह से जड़ा हुआ था और मेरू पर्वत के शिखर को तिरस्कृत कर

रहा था। वह सिंहासन सुवर्ण का ऊँचा बना हुआ था, अतिशय शोभायुक्त था और कान्ति से सूर्य को भी लज्जित कर रहा था, तब ऐसा जान पड़ता था मानो जिनेन्द्र भगवान् की सेवा करने के लिये सिंहासन के बहाने से सुमेरू पर्वत ही अपनी कान्ति से देदीप्यमान शिखर को ले गया हो जिससे निकलती हुई किरणों से समस्त दिशायें व्याप्त हो रही थीं, जो बड़े भारी ऐश्वर्य से प्रकाशमान हो रहा था, जिसका आकार लगे हुये सुन्दर रत्नों से अतिशय श्रेष्ठ था और जो नेत्रों को हरण करने वाला था, ऐसा वह सिंहासन बहुत ही शोभायमान हो रहा था। जिसका आकार बहुत बड़ा और देदीप्यमान था, जिससे कान्ति का समूह निकल रहा था, जो श्रेष्ठ रत्नों से प्रकाशमान था और जो अपनी शोभा से मेरू पर्वत की भी हँसी करता था ऐसा वह सिंहासन बहुत अधिक सुशोभित हो रहा था। 25 to 28। (आदि पुराण)।

विष्टरं तदलंचक्रे भगवानाद्वितीर्थकृतत् ।
चतुर्भिरङ्गुलेः स्वेन महिम्ना स्पृष्टतत्तलः ॥29॥

प्रथम तीर्थंकर भगवान वृषभदेव उस सिंहासन को अलंकृत कर रहे थे। वे भगवान् अपने महात्म्य से उस सिंहासन के तल से चार अँगुल ऊँचे अधर विराजमान थे। वे उस सिंहासन के तल भाग को स्पर्श ही नहीं किये थे ॥29॥

(2) पुष्पवृष्टि—

तत्रासीनं तमिन्द्राद्याः परिचेरूर्महेज्यया ।
पुष्पवृष्टिं प्रवर्षन्तो नभोमार्गाद् घना इव ॥30॥

उसी सिंहासन पर विराजमान हुए भगवान् की इन्द्र आदि देव बड़ी-बड़ी पूजाओं द्वारा परिचर्या कर रहे थे और मेघों की तरह अकाश से पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। मदोन्मत्त भ्रमरों के समूह से शब्दायगान तथा आकाशरूपी आँगन को व्याप्त करती हुई पुष्पों की वर्षा ऐसी पड़ रही थी मानो मनुष्यों के नेत्रों की माला ही हो।

द्विषड्यो जनभूभागमामुक्ता सुरवारिदैः ।
पुष्पवृष्टिः पतन्ती सा व्यधाच्चित्रं रजस्ततम् ॥32॥

देवरूपी बादलों द्वारा छोड़ी जाकर पड़ती हुई पुष्पों की वर्षा ने बारह योजन तक के भूभाग को पराग (धूलि) से व्याप्त कर दिया था, यह एक भारी आश्चर्य की बात थी। यहाँ पहले विरोध मालूम होता है क्योंकि वर्षा से तो धूलि शान्त होती है न कि बढ़ती है परन्तु जब इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि पुष्पों की वर्षा थी और उसने भूभाग को पराग अर्थात् पुष्पों के भीतर रहने वाले केशर के छोटे-छोटे कणों से व्याप्त कर दिया था तब वह विरोध दूर हो जाता है यह विरोधाभास अलंकार कहलाता है। स्त्रियों को सन्तुष्ट करने वाली वह फूलों की वर्षा भगवान् के समीप पड़ रही थी और ऐसी जान पड़ती थी मानो स्त्रियों के नेत्रों की सन्तति ही भगवान् के समीप पड़ रही हो। भ्रमरों के समूहों के द्वारा फैलाये हुये फूलों के पराग से सहित तथा देवों के द्वारा बरसाई वह पुष्पों की वर्षा बहुत ही अधिक

शोभायमान हो रही थी। जो गंगा नदी के शीतल जल से भीगी हुई है, जो अनेक भ्रमरों से व्याप्त है और जिसकी सुगन्धि चारों ओर फैली हुई है ऐसी वह पुष्पों की वर्षा भगवान् के आगे पड़ रही थी ॥32 to 35॥

(3) अशोक वृक्ष—

जेंसि तरुण मूले उप्पण्णं जाण केवलं णाणं।
उसहप्पहुदिजिणाणं ते चिय असोयरूक्ख त्ति ॥924॥

ऋषभादि तीर्थंकरों को जिन वृक्षों के नीचे केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ है वे ही अशोक वृक्ष हैं। न्यग्रोध, सप्तवर्ण, शाल, सरल, प्रियंगु, फिर वही (प्रियंगु), शिरीष, नागवृक्ष, अक्ष (बहेड़ा), धूली (मालिवृक्ष), पलाश, तेंदु, पाटल, पीपल, दधिपर्ण, नन्दी, तिलक, आम्र, कंकेली (अशोक), चम्पक, बकुल, मेषशृङ्ग, धव और शाल, ये अशोक वृक्ष लटकती हुई मालाओं से युक्त और घन्टासमूहादिक से रमणीय होते हुये पल्लव एवं पुष्पों से झुकी हुई शाखाओं से शोभायमान होते हैं ॥924 to927॥

तिलोयपण्णत्ती अध्याय—4

मरकतहरितैः पत्रैर्मणिमयकुसुमैश्चित्रैः।
मरुदुपविधुताः शाखाश्चिरमधृत महाशोकः ॥36॥ आ० पु०-अ० 13-पृ०-543

भगवान के समीप ही एक अशोक वृक्ष था जो कि मरकतमणि के बने हुए हरे-हरे पत्ते और रत्नमय चित्र-विचित्र फूलों से सहित था तथा मन्द-मन्द वायु से हिलती हुई शाखाओं को धारण कर रहा था। वह अशोक वृक्ष मद से मधुर शब्द करते हुये भ्रमरों और कोयलों से समस्त दिशाओं को शब्दायमान कर रहा था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् की स्तुति कर रहा हो। वह अशोक वृक्ष अपनी लम्बी-लम्बी शाखारूपी भुजाओं के चलाने से ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् के आगे नृत्य ही कर रहा हो और पुष्षों के समूहों से ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् के आगे देदीप्यमान पुष्पांजलि ही प्रकट कर रहा हो ॥36 to 38॥

रेजेऽशोकतरूरसौ रून्धन्मार्गं व्योमचर महेशानाम्।
तन्वन्योजनविस्तृताः शाखा धुन्वन् शोकमयमदो ध्वान्तम् ॥39॥

आकाश में चलने वाले देव और विद्याधरों के स्वामियों का मार्ग रोकता हुआ अपनी एक योजन विस्तार वाली शाखाओं को फैलाता हुआ शोकरूपी अन्धकार को नष्ट करता हुआ वह अशोक वृक्ष बहुत ही अधिक शोभायमान हो रहा था। फूले हुये पुष्पों के समूह से भगवान् के लिये पुष्पों का उपहार समर्पण करता हुआ वह वृक्ष अपनी फैली हुई शाखाओं से समस्त दिशाओं को व्याप्त कर रहा था और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो उन फैली हुई शाखाओं से दिशाओं को साफ करने के लिये ही तैयार हुआ हो। जिसकी जड़ वज्र की बनी हुई थी, जिसका मूल भाग रत्नों से देदीप्यमान था, जिसके अनेक प्रकार के पुष्प जयापुष्प की बनी कान्ति के समान पद्मरागमणियों के बने हुये थे और जो मदोन्मत्त कोयल तथा भ्रमरों से सेवित था। ऐसे उस वृक्ष को इन्द्र ने सब वृक्षों में मुख्य बनाया था ॥39 to 41॥

(4) **छत्रत्रय**—

छत्रं धवलं रूचिमत्कान्त्या चान्द्रीमजयद्रुचिरां लक्ष्मीम् ।
त्रेधा रूरुचे शशभृन्नूनं सेवां विदधज्जगतां पत्युः ।।42।।

भगवान के उपर जो देदीप्यमान सफेद छत्र लगा था उसने चन्द्रमा की लक्ष्मी को जीत लिया था और वह ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो तीनों लोकों के स्वामी भगवान् वृषभदेव की सेवा करने के लिये तीन रूप धारण कर चन्द्रमा ही आया हो। वे तीनों सफेद छत्र ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो छत्र का आकार धारण करने वाले चन्द्रमा के बिम्ब ही हों, उनमें जो मोतियों के समूह लगे हुये थे वे किरणों के समान जान पड़ते थे। इस प्रकार उस छत्र-त्रितय को कुबेर ने इन्द्र की आज्ञा से बनाया था। वह छत्रत्रय उदय होते हुये सूर्य की शोभा की हँसी उड़ाने वाले अनेक उत्तम-उत्तम रत्नों से जड़ा हुआ था तथा अतिशय निर्मल था इसलिये ऐसा जान पड़ता था मानो चन्द्रमा और सूर्य के सम्पर्क (मेल) से ही बना हो। जिसमें अनेक उत्तम मोती लगे हुये थे, जो समुद्र के जल के समान जान पड़ता था, बहुत ही सुशोभित था, चन्द्रमा की कान्ति को हरण करने वाला था, मनोहर था और जिसमें इन्द्रनील मणि भी देदीप्यमान हो रही थी ऐसा वह छत्रत्रय भगवान् के समीप आकर उत्कृष्ट कान्ति को धारण कर रहा था। क्या यह जगतरूपी लक्ष्मी का हास्य फैल रहा है? अथवा भगवान् का शोभायमान यशरूपी गुण है? अथवा धर्मरूपी राजा का मन्द हास्य है? अथवा तीनों लोकों में आनन्द करने वाला कलंक रहित चन्द्रमा है? इस प्रकार लोगों के मन में तर्क-वितर्क उत्पन्न करता हुआ वह देदीप्यमान छत्रत्रय ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो मोहरूपी शत्रु को जीत लेने से इकट्ठा हुआ तथा तीन रूप धारण कर ठहरा हुआ भगवान् के यश का मण्डल ही हो ।।42 to 47।।

(5) **64 चमर**—

पयः पयोधेरिव वीचिमाला प्रकीर्णकानां समितिः समन्तात् ।
जिनेन्द्रपर्यन्तनिषेविपक्षकरोत्करैराविरभूद् विधूता ।।48।।

जिनेन्द्र भगवान के समीप में सेवा करने वाले यक्षों के हाथों के समूहों से जो चारों ओर चमरों के समूह ढराये जा रहे थे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो क्षीरसागर के जल के समूह ही हों। अत्यन्त निर्मल लक्ष्मी को धारण करने वाला वह चमरों का समूह ऐसा जान पड़ता था मानो अमृत के टुकड़ों से ही बना हो अथवा चन्द्रमा के अंशों से ही रचा गया हो तथा वही चमरों के समूह भगवान् के चरण कमलों के समीप पहुँचकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किसी पर्वत से झरते हुए निर्झर ही हों। यक्षों के द्वारा लीलापूर्वक चारों ओर ढुराये जाने वाले निर्मल चमरों की वह पंक्ति बड़ी ही सुशोभित हो रही थी और लोग उसे देखकर ऐसा तर्क किया करते थे मानो यह आकाशगङ्गा ही भगवान की सेवा के लिए आयी हो। शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान सफेद पड़ती हुई वह चमरों की पंक्ति ऐसी आशंका उत्पन्न कर रही

थी कि क्या यह भगवान् के शरीर की कान्ति ही ऊपर को जा रही है अथवा चन्द्रमा की किरणों का समूह ही नीचे की ओर पड़ रहा है। अमृत के समान निर्मल शरीर को धारण करने वाली और अतिशय देदीप्यमान वह ढुरती हुई चमरों की पंक्ति ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो वायु से कम्पित तथा देदीप्यमान कान्ति को धारण करने वाली हिलती हुई और समुद्र के फेन की पंक्ति ही हो। चन्द्रमा और अमृत के समान कान्ति वाली ऊपर से पड़ती हुई वह उत्तम चमरों की पंक्ति बड़ी उत्कृष्ट शोभा को प्राप्त हो रही थी ओर ऐसी जान पड़ती थी मानो जिनेन्द्र भगवान् की सेवा करने की इच्छा से आती हुई क्षीर-समुद्र की वेला ही हो। क्या ये आकाश हंस उतर रहे हैं अथवा भगवान् का यश ही ऊपर को जा रहा है? इस प्रकार देवों के द्वारा शंका किये जाने वाले वे सफेद चमर भगवान् के चारों ओर ढुराये जा रहे थे।

जिस प्रकार वायु समुद्र के आगे अनेक लहरों के समूह उठाता रहता है उसी प्रकार कमल के समान दीर्घ नेत्रों को धारण करने वाले चतुर यक्ष भगवान् के आगे लीलापूर्वक विस्तृत और सफेद चमरों के समूह उठा रहे थे अर्थात् ऊपर की ओर ढोर रहे थे। अथवा वह ऊँची चमरों की पंक्ति ऐसी अच्छी सुशोभित हो रही थी मानो उन चमरों का बहाना प्राप्त कर जिनेन्द्र भगवान् की भक्तिवश आकाश गंगा ही आकाश से उतर रही हो अथवा भव्य जीवरूपी कुमुदिनियों को विकसित करने के लिये चाँदनी ही नीचे की ओर आ रही हो। इस प्रकार जिन्हें अतिशय संतोष प्राप्त हो रहा है और जिनके नेत्र प्रकाशमान हो रहे हैं ऐसे यक्षों के द्वारा ढुराये जाने वाले वे चन्द्रमा के समान उज्ज्वल कान्ति के धारक चमर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो भगवान् के गुण समूहों के साथ स्पर्धा ही कर रहे हों। शोभायमान अमृत की राशि के समान निर्मल और अपरिमित तेज तथा कान्ति को धारण करने वाले वे चमर भगवान् वृषभदेव के अद्वितीय जगत् के प्रभुत्व को सूचित कर रहे थे।

॥48 to 58॥

लक्ष्मीसमालिङ्गितवृक्षसोऽस्य श्रीवृक्षचिन्हं दधतो जिनेशः।
प्रकीर्णकानाममितद्युतीनां धीन्द्राश्चतुःषष्टिमुदाहरन्ति ॥59॥

जिनका वक्ष स्थल लक्ष्मी से आलिंगित है और जो श्रीवृक्ष का चिन्ह धारण करते हैं ऐसे श्रीजिनेन्द्र देव के अपरिमित तेज को धारण करने वाले उन चमरों की संख्या विद्वान् लोग चौंसठ बतलाते हैं। इस प्रकार सनातन भगवान् जिनेन्द्र देव के 64 चमर कहे गये हैं और वे ही चमर चक्रवर्ती से लेकर राजा पर्यन्त आधे-आधे होते हैं अर्थात् चक्रवर्ती के बत्तीस, अर्धचक्री के सोलह, मण्डलेश्वर के आठ, अर्धमण्डलेश्वर के चार, महाराज के दो और राजा के एक चमर होता है।

(6) **देव दुन्दुभी**—

सुरदुन्दुभयो मधुरध्वनयो निनदन्ति सदा स्म नमोविवरे।
जलदागमभङ्किभिरून्मदिभिः शिखिभिः परिवीक्षितपद्धतयः ॥61॥

इसी प्रकार उस समय वर्षा ऋतु की शंका करते हुए मदोन्मत मयूर जिनका मार्ग बड़े प्रेम से देख रहे थे ऐसे देवों के दुन्दुभी मधुर शब्द करते हुए आकाश में बज रही थी। जिनका शब्द अत्यन्त मधुर और गम्भीर था, ऐसे पणव, तुणव, काहल, शंख और नगाड़े आदि बाजे समस्त दिशाओं के मध्य भाग को शब्दायमान करते हुये तथा आकाश को आच्छादित करते हुए शब्द कर रहे थे। देवस्वरूप शिल्पियों के द्वारा मजबूत दण्डों से ताड़ित हुए वे देवों के नगाड़े जो शब्द कर रहे थे उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो कुपित होकर स्पष्ट शब्दों में यही कह रहे हों कि अरे दुष्टों ! तुम लोग जोर-जोर से क्यों मार रहे हो ? क्या यह मेघों की गर्जना है ? अथवा जिसमें उठती हुई लहरें शब्द कर रही हैं ऐसा समुद्र ही क्षोभ को प्राप्त हुआ है ? इस प्रकार तर्क-वितर्क कर चारों ओर फैलता हुआ भगवान् की देवदुन्दुभियों का शब्द सदा जयवंत रहे ॥61 to 64॥

(7) **भामण्डल—**

प्रभया परितो जिनदेहभुवा जगती सकला समवादिसृतेः ।
रूरुचे ससुरासुरमर्त्यजनाः किमिवाद्‌भुतमीदृशि धाम्नि विभोः ॥65॥

सुर, असुर और मनुष्यों से भरी हुई वह समवसरण की समस्त भूमि जिनेन्द्र भगवान् के शरीर से उत्पन्न हुई तथा चारों ओर फैली हुई प्रभा अर्थात् भामण्डल से बहुत ही सुशोभित हो रही थी सो ठीक ही है क्योंकि भगवान के ऐसे तेज में आश्चर्य ही क्या है ।

तरूणार्करूचिं नु तिरोदधति सुरकोटिमहांसि नु निर्धुनती ।
जगदेकमहोद यमासृजति प्रथमे स्म तदा जिनदेहरूचिः ॥66॥

उस समय वह जिनेन्द्र भगवान के शरीर की प्रभा मध्यान्ह के सूर्य की प्रभा को तिरोहित करती हुई अपने प्रकाश में उसका प्रकाश छिपाती हुई, करोड़ों देवों के तेज को दूर हटाती हुई और लोक में भगवान् का बड़ा भारी ऐश्वर्य प्रकट करती हुई चारों ओर फैल रही थी ।

जिनदेहरूचावमृताब्धिशुचौ सुरदानवमर्त्यजना ददृशुः ।
स्वभवान्तरसप्तकमात्तमुदो जगतो बहु मङ्गलदर्पणके ॥67॥

अमृत के समुद्र के समान निर्मल और जगत को अनेक मंगल करने वाले दर्पण के समान, भगवान् के शरीर की उस प्रभा (प्रभामण्डल) में सुर, असुर और मनुष्य लोग प्रसन्न होकर अपने सात-सात भव देखते थे। 'चन्द्रमा शीघ्र ही भगवान् के छत्रत्रय की अवस्था को प्राप्त हो गया है' यह देखकर ही मानो अतिशय देदीप्यमान सूर्य भगवान् के शरीर की प्रभा के छल से पुराण कवि भगवान् वृषभदेव की सेवा करने लगा था। भगवान् का छत्रत्रय चन्द्रमा के समान था और प्रभामण्डल सूर्य के समान था ॥67 to 68॥

(8) **सम्पूर्णगण—**

जिणभरभत्तिपसत्ता अंजलिहत्था पफुल्लमुहकमला ।
चेट्ठंति गणा सव्वे एक्केक्कं पेढिऊणजिणं ॥पृ० 932॥ति० प० अ० 4

गाढ भक्ति में आसक्त, हाथों को जोड़े हुए, और विकसित मुखकमल से संयुक्त, ऐसे सम्पूर्ण गण प्रत्येक तीर्थंकर को घेरकर स्थित रहते हैं।

अष्ट मंगल द्रव्य

अलौकिक सर्व मंगलमय मंगलकर्त्ता धर्म तीर्थेश तीर्थंकर के समवसरण स्थित श्रीमण्डप में लौकिक अष्टमंगल द्रव्य शोभायमान होते हैं। जहाँ पर अलौकिक आध्यात्मिक मंगल होता है वहाँ पर लौकिक मंगल गौण स्वयमेव होना सहज है। वे लौकिक मंगल विश्व धर्म सभा में स्थित होकर मानो उद्घोषणा कर रहे हैं कि आठों पृथ्वी में तीर्थंकर भगवान ही सर्वश्रेष्ठ मंगल हैं।

सतालमङ्गलच्छत्रचामरध्वजदर्पणाः।
सुप्रतिष्टकभृङ्गारकलशाः प्रतिगोपुरम् ॥275॥ आ० पु० अध्याय 22

प्रत्येक गोपुर-द्वार पर पंखा, छत्र, चामर, ध्वजा, दर्पण, सुप्रतिष्ठक (ठौना), भृङ्गार और कलश ये आठ-आठ मङ्गल द्रव्य रखे हुए थे। समवसरण में अनेक गोपुर में एवं श्रीमण्डप में अष्ट मंगल द्रव्य होते हैं। अकृत्रिम तथा कृत्रिम जिन मंदिर समवसरण की प्रतिकृति होने के कारण अकृत्रिम जिन मंदिर में तथा कृत्रिम जिन मंदिर में अष्ट मंगल द्रव्य होते हैं।

भिंगार कलस-दप्पण चामर धय विणय छत्त-सुपइट्ठा।
अहुत्तर सय संखा, पत्तेक्कं मंगला तेसुं ॥1904॥

ति० प० अ० 4

भिंगारकलसदप्पणवीयणधयचामरादवत्तमहा।
सुपरट्ठ मंगलाणि य अट्ठहियसयाणि पत्तेयं ॥989॥
भृंगारकलशदर्पणवीजनध्वज चामरात पत्रमथ।
सुप्रतिष्ठं मङ्गलानि च अष्टाधिकशतानि प्रत्येकम् ॥989॥

—त्रिलोकसार—पृ० 753

महाझारी, कलश, दर्पण, पंखा, ध्वजा, चामर, छत्र और ठौना ये आठ मंगल द्रव्य हैं। ये प्रत्येक मंगल द्रव्य 108 + 108 प्रमाण होते हैं।

उपरोक्त अष्टमंगल द्रव्य जिस समय तीर्थंकर भगवान उपदेशामृत द्वारा विश्व को मंगलमय करने के लिए मंगल विहार करते हैं उस समय अष्टमंगल द्रव्य को लेकर देव लोग मंगल सूचना स्वरूप आगे-आगे चलते हैं। ○

अध्याय

3

तीर्थंकर सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विशेष वर्णन

कुबेर की किमिच्छक घोषणा—

विहाराभिमुखे खेऽगाग्राज्जिनेन्द्रऽवतरिष्यति ।
स्वर्गाग्रादिव भूलोकं समुद्धर्तुं भवोदधेः ॥1॥

हरिवंशपुराण 59 सर्ग । पृष्ठ 694

गृह्यतां गृह्यतां काम्यं यथाकाम मिहार्थिभिः ।
इति नित्यं धनेशेन घुष्यते काम घोषणा ॥2॥

जिस प्रकार पहले संसार-समुद्र से प्राणियों को पार करने के लिये भगवान् स्वर्ग के अग्रभाग से पृथिवी लोक पर अवतीर्ण हुए थे, उसी प्रकार जब विहार के लिए सम्मुख हो गिरनार पर्वत के शिखर से नीचे उतरने के लिये उद्यत हुये तब कुबेर ने निरन्तर यह मनचाही घोषणा शुरू कर दी कि जिस याचक को जिस वस्तु की इच्छा हो वह यहाँ आकर उसे इच्छानुसार ले ।। 1—21 ॥

इच्छित वस्तु प्रदायी भूमि—

कामदा कामवद् भूमिः कल्प्यते मणिकुट्टिमा ।
माङ्गल्य विजयोद्योगे विभोः किं वा न कल्प्यते ॥3॥

उस समय कामधेनु के समान इच्छित पदार्थ प्रदान करने वाली मणिमयी भूमि बनायी गयी । सो ठीक ही है क्योंकि भगवान् के मंगलमय विजयोद्योग के समय क्या नहीं किया जाता ? अर्थात् सब कुछ किया जाता है ।

सर्व भूत हितकारी 4 महाभूत—

महाभूतानि सर्वाणि भर्तुर्भूतहितोद्यमे ।
सर्वभूतहितानि स्युस्तादृशी खलु सार्वता ॥4॥

जबकि भगवान् का समस्त भूतों-प्राणियों के हित के लिए उद्यम हो रहा था तब पृथिवी, जल, अग्नि और वायुरूप चार महाभूत भी समस्त भूतों-प्राणियों के हितकर हो गये सो ठीक ही है क्योंकि भगवान् की सर्व हितकारिता वैसी ही अनुपम थी ।

धन की वर्षा—

प्रावृषेण्याम्बुधारेव वसुधारा वसुन्धराम् ।
दिवोऽन्वर्थाभिधानत्वं नयतीन्यपतत्यथि ॥5॥

धन की बड़ी मोटी धारा वर्षा ऋतु के मेघ की जलधारा के समान पृथिवी के वसुन्धरा नाम को सार्थकता प्राप्त कराती हुई आकाश से मार्ग में पड़ने लगी ।

कमलमयी पंक्तियाँ—

ये द्वे (यद् द्वे) पूर्वोत्तरे पङ्क्ती हेमाम्बुजसहस्रयोः ।
सहस्रपत्रं तत्पूतं भुवः कण्ठे गुणाकृती ॥7॥

सर्वप्रथम देवों ने एक ऐसे सहस्र दल पवित्र कमल की रचना की जो पूर्व और उत्तर की ओर स्वर्णमय हजार-हजार कमलों की दो पंक्तियाँ धारण करता था तथा वे पंक्तियाँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो पृथिवी रूपी स्त्री के कण्ठ में पड़ी दो मालाएँ ही हों ॥

पद्मरागमयं भास्वच्चित्ररत्नविचित्रतम् ।
प्रवृत्तप्रतिपत्रस्थ पद्माभागमनोहरम् ॥8॥
सहस्राक्ष सहस्राक्षि भृङ्गावलिनिषेवितम् ।
देवासुरनरालोकमधुपापानमण्डलम् ॥9॥
पद्मोद्भासि परं पुण्यं पद्मयानं प्रकाशते ।
सद्यो योजन विषकम्भं तच्चतुर्भागकर्णिकम् ॥10॥

वह कमल पद्मराग मणियों से निर्मित था, देदीप्यमान नाना प्रकार के रत्नों से चित्र-विचित्र था, प्रत्येक पत्र पर स्थित लक्ष्मी के भाग से मनोहर था, इन्द्र के हजार नेत्ररूपी भ्रमरावली से सेवित था, देव, धरणेन्द्र और मनुष्यों के नेत्ररूपी भ्रमरों के लिए मानो मधुगोष्ठी का स्थान था, लक्ष्मी से सुशोभित था, परम पुण्य रूप था, एक योजन विस्तृत था और उसके चौथाई भाग प्रमाण उसकी कर्णिकाडण्ठल थी ॥ 8—10 ॥

महिमाग्रे सुरेशाष्टमूर्तिस्पष्ट गुणश्चियः ।
वसवोऽष्टौ पुरोधाय वासवं वरिवस्यया ॥11॥
जय प्रसीद मर्तुस्ते वेला लोकहितोद्यमे ।
जाताद्येत्यानमन्तीशं स हि विश्वसृजो विधिः ॥12॥

यह कमल पद्मयान के नाम से प्रसिद्ध था । सेवा द्वारा इन्द्र को आगे कर 8 वसु उस मद्मयान के आगे-आगे चल रहे थे जो ऐसे जान पड़ते थे मानो इन्द्र के अणिमा, महिमा आदि 8 गुण ही मूर्तिधारी हो चल रहे हों । वे वसु यह कहते हुए भगवान् को प्रणाम करते जा रहे थे कि हे भगवन् ! आप जयवन्त हो, प्रसन्न होइए, लोकहित के लिए उद्यम करने का आज समय आया है । यथार्थ मे वह सब भगवान् का महात्म्य था ॥ 11—12 ॥

ततः प्रक्रमते शम्भुरारोढुं पद्मयानकम् ।
तत्क्षणं भूयते भूम्या हृष्टसंभ्रान्तयापि च ॥13॥

तदनन्तर उस पद्मयान पर भगवान् जिनेन्द्र आरूढ़ हुये थे और उस समय पृथिवी हर्ष से झूमती हुई-सी जान पड़ती थी।

धर्म दिग्विजय प्रमाण की अद्भुत छठा—

विजयी विहरत्येष विश्वेशो विश्वभूतये ।
धर्मचक्र पुरस्सारी त्रिलोकी तेन संपदा ॥14॥
वर्धतां वर्धतां नित्यं निरीतिर्मरुतामिति ।
श्रूयतेऽत्यम्बुदध्वानः प्रमाणपटहध्वनिः ॥15॥

उस समय मेघों के शब्द को पराजित करने वाला देव-दुन्दुभियों का यह प्रयाणकालिक शब्द सुनाई पड़ रहा था कि धर्मचक्र को आगे-आगे चलाने वाले ये जगत् के स्वामी विजयी भगवान् सब जीवों के वैभव के लिये विहार कर रहे हैं। इनके इस विहार से तीन लोक के जीव सम्पत्ति से वृद्धि को प्राप्त हों अर्थात् सबकी सम्पदा वृद्धिगत हो, और सब अतिवृष्टि आदि ईतियों से रहित हों।

वीणावेणु मृदङ्गोरुभल्लरीशङ्ख काहलैः ।
तूर्यमङ्गलघोऽपि पयोधिमधिगर्जति ॥16॥

उस समय वीणा, बाँसुरी, मृदंग, विशाल झालर, शंख और काहल के शब्द से युक्त तुरही का मंगलमय शब्द भी समुद्र की गर्जना को तिरस्कृत कर रहा था।

संकथाक्रोशगीतादृहासैः कलकलोत्तरैः ।
द्यावापृथिव्यौ प्राप्नोति प्रास्थानिक महारवः ॥17॥

प्रस्थान काल में होने वाला बहुत भारी शब्द, उत्तम कथा, चिल्लाहट, गीत, अट्टहास तथा अन्य कल-कल शब्दों से आकाश और पृथिवी के अन्तराल को व्याप्त कर रहा था।

वल्गु गायन्ति किन्नर्यो नृत्यन्त्यप्सरसो दिवि ।
स्पृशन्त्यातोद्यमानर्ता गन्धर्वादय इत्यपि ॥18॥
स्तुवन्ति मङ्गलस्तोत्रैर्जय मङ्गल पूर्वकैः ।
तत्र तत्र सतां वन्द्यं वन्दिनो नृसुरासुराः ॥19॥

आकाश में किन्नरियाँ मनोहर गान गाती थीं, अप्सरायें नृत्य करती थीं, झूमते हुए गन्धर्व आदि देव तबला बजा रहे थे और नमस्कार करते हुये मनुष्य, सुर तथा असुर, सज्जनों के द्वारा वन्दनीय भगवान् को नमस्कार करते हुए जय-जय की मंगलध्वनि पूर्वक मंगलमय स्तोत्रों से जहाँ-तहाँ उनकी स्तुति कर रहे थे ॥18—19॥

चित्रैश्चित्तहरैर्दिव्यैर्मानुषैश्च समन्ततः ।
नृत्यसङ्गीतवादित्रैर्भूतलेऽपि प्रभूयते ॥20॥

पृथिवी तल पर भी सब ओर मनुष्य चित्त को हरने वाले नाना प्रकार के दिव्य नृत्य, संगीत और वादित्रों से युक्त हो रहे थे ।

"विहार के समय देवों की भक्ति"

पालयन्ति सदिग्भागैर्लोकपालाः सभूतयः ।
भर्त्तुसेवा हि भृत्यानां स्वाधिकारेषु सुस्थितिः ॥21॥

विभूतियों से सहित लोकपाल समस्त दिग्भागों के साथ सबकी रक्षा कर रहे थे । सो ठीक ही है क्योंकि अपने-अपने नियोगों पर अच्छी तरह स्थित रहना ही भृत्यों की स्वामी सेवा है ।

धावन्ति परितोदेवाकेचिद्भासुरदर्शनाः ।
हिंसया ज्यायसः सर्वान्त्सार्योत्सार्य दूरतः ॥22॥

देदीप्यमान दृष्टि के धारक कितने ही देव समस्त हिंसक जीवों को दूर खदेड़ कर चारों ओर दौड़ रहे थे ।

उदस्तैरत्नवलयैर्वीचिहस्तैः कृताञ्जलिः ।
भर्त्रे प्रतिस्तदोदन्वान्वेलामूर्ध्ना नमस्यति ॥23॥

उस समय प्रसन्नता से भरा समुद्र, रत्नरूप वलयों से सुशोभित ऊपर हुये तरंगरूपी हाथों से अंजली बाँधकर बेलारूपी मस्तक से मानों भगवान् के लिये नमकार ही कर रहा था ।

बिलिम्बित सहस्रार्कयुगपत्पतनोदयैः ।
नमताम्नन्दितालोक नामोन्नामैः पदे-पदे ॥24॥
सुराणां भूतलस्पर्शिमकुटैर्बहु कोटिभिः ।
भूः पुरः सोपहारेव शोभतेऽब्जकोटिभिः ॥25॥

उस समय डग-डग पर भगवान् को नमस्कार करने वाले देवों के करोड़ों देदीप्यमान मुकुटों का बहुत भारी प्रकाश बार-बार नीचे को झुकता और बार-बार ऊपर को उठता था । उससे ऐसा जान पड़ता था मानों हजारों सूर्यो का पतन तथा उदय एक साथ हो रहा हो । उन्हीं देवों के जब करोड़ों मुकुट पृथिवीतल का स्पर्श करते थे तब भगवान् के आगे की भूमि ऐसी सुशोभित होने लगती थी मानों उस पर करोड़ों कमलों की भेंट ही चढ़ाई गयी हो ।

लोकान्तिकाः पुरो यान्ति लोकान्तव्यापितेजसः ।
लोकेशस्य यथालोकाः पुरोगा मूर्तिसम्भवाः ॥26॥

जिनका तेज लोक के अन्त तक व्याप्त था, ऐसे लौकान्तिक देव भगवान् के आगे-आगे चल रहे थे और वे ऐसे जान पड़ते थे मानों लोक के स्वामी भगवान् जिनेन्द्र का प्रकाश ही मूर्तिधारी हो आगे-आगे गमन कर रहा था ।

पद्मा सरस्वतीयुक्ता परिवारात्तमङ्गला ।
पद्महस्ता पुरो याति परीत्य परमेश्वरम् ॥27॥

जिनके परिवार की देवियों ने मंगलद्रव्य धारण कर रखे थे तथा जिनके हाथों में स्वयं कमल विद्यमान थे, ऐसी पद्मा और सरस्वती देवी, भगवान् की प्रदिक्षणा देकर उनके आगे-आगे चल रही थीं ।

प्रसीदेत इतो देवेत्यानम्य प्रकृताञ्जलिः ।
तद्भूमिपतिभिः सार्धं पुरो याति पुरन्दरः ॥28॥

हे देव ! इधर प्रसन्न होइए, इधर प्रसन्न होइए । इस प्रकार नमस्कार कर जिसने अंजलि बाँध रखी थी ऐसा इन्द्र तद्-तद् भूमिपतियों के साथ भगवान् के आगे-आगे चल रहा था ।

एवमीशस्त्रिलोकेशपरिवारपरिष्कृतः ।
लोकानां भूतये भूतिमुद्वहन् सार्वलौकिकीम् ॥29॥
पद्माकेतुः पवित्रात्मा परमं पद्मयानकम् ।
भव्य पद्मैकसद्बन्धुर्यदारोहति तत्क्षणात् ॥30॥
जय नाथ जय ज्येष्ठ जय लोकपितामह ।
जयात्मभूर्जयात्मेश जय देव जयाच्युत ॥31॥
जय सर्वजगद्बन्धो जय सद्धर्मनायक ।
जय सर्वशरण्यश्रीर्जय पुण्यजयोत्तम ॥32॥
इत्युदीर्णसुकृद्घोषो रून्धानो रोदसी स्फुटः ।
जपत्युच्चोऽतिगम्भीरो घनाघनघनध्वनिः ॥33॥

इस प्रकार जो तीनों लोकों के इन्द्र उनके परिवार से घिरे हुये थे, लोगों की विभूति के लिए जो समस्त लोक की विभूति को धारण कर रहे थे, जो कमल की पताका से सहित थे । जिनकी आत्मा अधिक पवित्र थी और जो भव्य जीवरूपी कमलों को विकसित करने के लिये उत्तम सूर्य के समान थे, ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र जिस समय उस पद्मयान पर आरूढ़ हुये उसी समय देवों ने मेघ गर्जना के समान यह शब्द करना शुरू कर दिया कि हे नाथ ! आपकी जय हो, हे ज्येष्ठ ! आपकी जय हो, हे लोकपितामह ! आपकी जय हो, हे आत्मभू ! आपकी जय हो, हे आत्मेश ! आपकी जय हो, हे देव ! आपकी जय हो, हे अच्युत ! आपकी जय हो, हे समस्त जगत् के बन्धु ! आपकी जय हो, हे समीचीन धर्म के स्वामी ! आपकी जय हो, हे सबके शरण-भूत लक्ष्मी के धारक ! आपकी जय हो, हे पुण्यरूप ! आपकी जय हो, हे उत्तम ! आपकी जय हो । इस प्रकार उठा हुआ पुण्यात्मा जनों का जोरदार, अत्यन्त गम्भीर एवं मेघ गर्जना की तुलना करने वाले वह शब्द आकाश और पृथ्वी के अन्तराल को व्याप्त करता हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ।

स देवः सर्वदेवेद्रव्याहृतालोकमङ्गलः ।
तन्मौलिभ्रमरालीढभ्रमत्पादपयोरुहः ।।34।।

तत्पयोरुहवासिन्या पद्मयानन्दयज्जगत् ।
व्यहरत् परमोद्भूतिर्भूतानामनुकम्पया ।।35।।

तदन्तर समस्त इन्द्र जिनके जय-जयकार और मंगल शब्दों का उच्चारण कर रहे थे, जिनके चलते हुए चरण कमल उन इन्द्रों के मुकुट रूपी भ्रमरों से व्याप्त थे, जो उन कमलों में निवास करने वाली लक्ष्मी से समस्त जगत् को आनन्दित कर रहे थे, और जो अत्यन्त उत्कृष्ट विभूति के धारक थे, ऐसे भगवान नेमि जिनेन्द्र जीवों पर दया कर बिहार करने लगे।

देवमार्गोत्थिते दिव्ये विन्यस्याब्जे पदाम्बुजम् ।
स्वच्छाम्भोवाङ्मुखाम्भोजप्रतिबिम्बश्रिणि प्रभुः ।।36।।

वे प्रभु, आकाश में, स्वच्छ जल के भीतर पड़ते हुए मुख-कमल के प्रतिबिम्ब की शोभा को धारण करने वाले दिव्य कमल पर अपने चरण कमल रखकर विहार कर रहे थे।

उद्यतस्तस्य लोकार्थं राजराजः पुरस्सरः ।
राजते राजयन्मार्गं पुरोभानोर्यथारूणः ।।37।।

उस समय भगवान् के दर्शन करने के लिए उद्यत एवं उनके आगे-आगे चलने वाला कुबेर मार्ग को सुशोभित करता हुआ ऐसा जान पड़ता था जैसे सूर्य के आगे चलता हुआ उसका सारथी अरुण हो।

मंगलमय का मंगलमय मार्ग

पदवी जातरुपाङ्गी स्फुरन्मणिविभूषणा ।
श्लाघते सा सती भर्त्रे स्वभर्त्रे भामिनी यथा ।।38।।

भगवान के विहार का वह मार्ग सुवर्णमय था एवं देदीप्यमान मणियों के आभूषण से सहित था। इसलिये अपने पति के स्थित, सुवर्णमय शरीर की धारक एवं देदीप्यमान मणियों के आभूषणों से सुशोभित पतिव्रता स्त्री के समान प्रशंसनीय था।

परितः परिमार्जन्ति मरुतो मधुरेरणैः ।
अवदातक्रियायोगैः स्वां वृत्तिं साधवो यथा ।।39।।

जिस प्रकार मुनिगण निर्मल क्रियाओं से अपनी वृत्ति को सदा साफ करते रहते हैं—निर्दोष बनाये रखते हैं उसी प्रकार पवनकुमार देव वायु के मन्द-मन्द झोकों से उस मार्ग को साफ बनाये रखते थे।

अभ्युक्षन्ति सुरास्तत्र गन्धाम्भोऽम्बुदवाहनाः ।
स्फुरत्सौदामिनी दीप्ति भासिताखिलदिङ्मुखाः ।।40।।

कौंधती हुई बिजली की चमक से समस्त दिशाओं के अग्रभाग को प्रकाशित करने वाले मेघवाहन देव उस मार्ग से सुगन्धित जल सींचते जाते थे।

मन्दारकुसमैर्मत्त भ्रमद्भ्रमरचुम्बितैः।
नन्द्यते सुरसंघातैर्मार्गो मार्गविदुद्यमे ॥41॥

मोक्ष मार्ग के ज्ञाता भगवान् के विहार काल में, देवों के समूह जिन पर मदोन्मत्त भौरें मंडरा रहे थे ऐसे मन्दार, वृक्ष के पुष्पों से मार्ग को सुशोभित कर रहे थे।

ज्योतिर्मण्डलसंकाशैः सौवर्णरसमण्डलैः।
सलग्नैः शोभते मार्गो रत्नचूर्णतलाचितैः ॥42॥

वह मार्ग, गले हुये सोने के रस के उन मण्डलों से जिनके कि तलभाग रत्नों के चूर्ण से व्याप्त थे एवं नक्षत्रों के समूह के समान जान पड़ते थे, अतिशय सुशोभित हो रहा था।

गुह्यकांश्चित्रपत्राणि चिन्वते कोङ्कुमैः रसैः।
चित्रकर्मज्ञतां चित्रां स्वामाचिख्यासवो यथा ॥43॥

गुह्यक जाति के देव केशर के रस से नाना प्रकार के बेल-बूटे बनाते जाते थे मानो वे अपनी चित्रकर्म की नाना प्रकार की कुशलता को प्रकट करना चाहते थे।

कदलीनालिकेरेक्षुक्रमुकाद्यैः क्रमस्थितैः।
सपत्रैर्मार्गसीमापि रम्यारामायते द्वयी ॥44॥

मार्ग के दोनों ओर की सीमाएं क्रमपूर्वक खड़े किए हुए पत्तों से युक्त केला, नारियल, ईख तथा सुपारी आदि के वृक्षों से सुन्दर बगीचों के समान जान पड़ती थीं।

तत्राक्रीड़पदानि स्युः सुन्दराणि निरन्तरम्।
यत्र हृष्टाः स्वकान्ताभिराक्रीड्यन्ते नरामराः ॥45॥

मार्ग में निरन्तर सुन्दर क्रीड़ा के स्थान बने हुए थे जिनमें हर्ष से भरे मनुष्य और देव अपनी स्त्रियों के साथ नाना प्रकार की क्रीडा करते थे।

भोग्यान्यपि यथाकामं भगोगिनां भोग भूमिवत्।
सर्वाण्यन्यूनभूतीनि संभवन्त्यन्तरेऽन्तरे ॥46॥

जिस प्रकार भोग भूमि में भोगी जीवों को इच्छानुसार भोग्य वस्तुएं प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार उस मार्ग में भी, बीच-बीच में भोगी जीवों को उत्कृष्ट विभूति से युक्त सब प्रकार की भोग वस्तुएँ प्राप्त होती रहती थीं।

योजनत्रयविस्तारो मार्गो मार्गान्तयोर्द्वयोः।
सीमानो द्वे अपि ज्ञेये गव्यूतिद्वयविस्तृते ॥47॥

भगवान् के विहार का वह मार्ग तीन योजन चौड़ा बनाया गया था तथा मार्ग के दोनों ओर की सीमाएँ दो-दो कोस चौड़ी थी ।

तौरणैः शोभते मार्गः करणैरिव कल्पितैः ।
दृष्टिगोचरसम्पन्नैः सौवर्णैरष्टमंगलैः ॥48॥

वह मार्ग जगह-जगह निर्मित तोरणों तथा दृष्टि में आने वाले सुवर्णमय अष्टमङ्गल द्रव्यों से ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो इन्द्रियों से ही सुशोभित हो रहा था ।

कामशाला रविशालाः स्युः कामदास्तत्र तत्र च ।
भागवत्यो यथा मूर्ताः कामदा दानशक्तयः ॥49॥

मार्ग में जगह-जगह भोगियों को इच्छानुसार पदार्थ देने वाली बड़ी-बड़ी कामशालाएँ बनी हुई थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो इच्छानुसार पदार्थ देने वाली भगवान् की मूर्तिमयी दानशक्तियां ही हों ।

तोरणान्तरभूतङ्गसमस्तकदलीध्वजैः ।
संछन्नोऽध्वा घनच्छायो रूणद्धि सवितुश्छविम् ॥50॥

तोरणों की मध्य भूमि में ऊँचे-ऊँचे केले के वृक्ष तथा ध्वजाएं लगी हुई थीं उनसे अच्छादित हुआ मार्ग इतनी सघन छाया से युक्त हो गया था कि वह सूर्य की छवि को भी रोकने लगता था ।

मंगल विहार का मंडपः—

वनवासिसुरैर्वन्य मञ्जरी पुञ्ज पुञ्जरः ।
स्वपुण्य प्रचयाकारः कल्प्यते पुष्पमण्डपः ॥51॥

वन के निवासी देवों ने वन की मञ्जरियों के समूह से पीला-पीला दिखाने वाला पुष्पमण्डप तैयार किया था जो उनके अपने पुण्य के समूह के समान जान पड़ता है ।

युक्तो रत्नलता चित्रभित्तिभिः सद्वियोजनः ।
चन्द्रादित्य प्रभारोचिर्मण्डलोपान्तमण्डितः ॥52॥
घण्टिकाकल निर्ह्लादैर्घण्टानादैर्निनादयन् ।
दिशो मुक्तागुणामुक्तप्रान्तमध्यान्तरान्तरः ॥53॥
सद्गन्धा कृष्ट संभ्रान्त भृङ्गमालोल सद्युतिः ।
वियतीश यशोमूर्तं वितानच्छविरीक्ष्यते ॥54॥
सोत्तम्भ स्तम्भ सांकाशैः स्थूल मुक्तागुणोद्भवैः ।
चतुर्भिर्दामभिर्भाति विद्रुमान्तान्तरा चितैः॥55॥
तस्यान्तस्थो दयामूर्तिः प्रयाति दमिताहितः ।
हिताय सर्वलोकस्य स्वयमशिः स्वयंप्रभः ॥56॥

वह पुष्पमण्डप रत्नमयी लताओं के चित्रों से सुशोभित दीवालों से युक्त था, दो योजन विस्तार वाला था, चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा के कान्तिमण्डल से समीप में सुशोभित था, छोटी-छोटी घाटियों की रुनझुन और घण्टाओं के नाद से दिशाओं

को शब्दायमान कर रहा था, उसके दोनों छोर तथा मध्य का अंतर मोतियों की मालाओं से युक्त था, उत्तम गंध से आकर्षित हो सब ओर मँडराते हुए भ्रमरों के समूह से उसकी कान्ति उल्लसित हो रही थी, उस आकाश में उसका चँदेवा भगवान् के मूर्तिक यश के समान दिखाई देता था, उस मण्डप के चारों कोनों में ऊँचे खड़े किये हुए खम्भों के समान सुशोभित, बड़े-बड़े मोतियों से निर्मित तथा बीच-बीच में मूँगाओं से खचित चार मालाएँ लटक रही थीं, उनसे वह अधिक सुशोभित हो रहा था। दया की मूर्ति, अहित का दमन करने वाले, स्वयं ईश एवं स्वयं देदीप्यमान भगवान् नेमि जिनेन्द्र उस मण्डप के मध्य में स्थित हो समस्त जीवों के हित के लिए विहार कर रहे थे ॥52-56॥

सात-सात भव प्रदर्शक भामण्डल:—

पश्यन्त्यात्म भवान् सर्वे सप्त-सप्त परापरान् ।
यत्र तद्भासतेऽत्यर्कं पश्चाद्भामण्डलं प्रभोः ॥57॥

उसी पुष्पमण्डप में भगवान् के पीछे सूर्य को पराजित करने वाला भामण्डल सुशोभित होता था जिसमें सब जीव अपने आगे-पीछे से सात-सात भव देखते हैं।

मंगलमय की मंगल यात्रा के मंगल द्रव:—

त्रिलोकी वान्त साराभात्युपर्युपरि निर्मला।
त्रिच्छत्री सा जिनेन्द्र श्रीस्त्रैलोक्येशित्व शंसिनीः ॥58॥

भगवान् के सिर पर ऊपर-ऊपर अत्यन्त निर्मल तीन छत्र सुशोभित हो रहे थे जिनमें तीनों लोकों के द्वारा सार तत्त्व प्रकट किया गया था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो वह जिनेन्द्र भगवान् की लक्ष्मी तीन लोक के स्वामित्व को सूचित ही कर रही थी।

चामराण्यमितो भान्ति सहस्त्राणि दमेश्वरम् ।
स्वयंवीज्यानि शैलेन्द्रं हंसा इव नभस्तले ॥59॥

भगवान् के चारों ओर अपने आप ढुलने वाले हजारों चमर ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे आकाशतल में मेरु पर्वत के चारों ओर हंस सुशोभित होते हैं।

ऋषयोऽनुव्रजन्तीशं स्वर्गिणः परिवृण्वते ।
प्रतीहारः पुरो याति वासवो वसुभिः सह ॥60॥

ऋषिगण भगवान् के पीछे-पीछे चल रहे थे, देव उन्हें घेरे हुए थे और इन्द्र प्रतिहार बनकर 8 वसुओं के साथ भगवान् के आगे-आगे चलता था।

ततः केवललक्ष्मीतः प्रतिपद्या प्रकाशते ।
साकं शच्या त्रिलोकोरुभूतिर्लक्ष्मीः समङ्गला ॥61॥

इन्द्र के आगे तीन लोक की उत्कृष्ट विभूति से युक्त लक्ष्मी नामक देवी, मंगलद्रव्य लिये शची देवी के साथ-साथ जा रही थी और वह केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी के प्रतिबिम्ब के समान जान पड़ती थी।

श्रीसनाथैस्ततः सर्वैर्भूयते पूर्णमङ्गलैः ।
मङ्गलस्य हि माङ्गल्या यात्रा मङ्गत्रपूर्विकाः ॥62॥

तदनन्तर श्रीदेवी से सहित समस्त एवं परिपूर्ण मंगलद्रव्य विद्यमान थे सो ठीक ही है क्योंकि मंगलमय भगवान् की मंगलमय यात्रा मंगल द्रव्यों से युक्त होती ही है।

शङ्खपद्मो ज्वलन्मौलि सार्थीयौ सत्त्वकामदौ ।
निधिभूतौ प्रवर्तेते हेमरत्नप्रवर्षिणौ ॥63॥

उनके आगे, जिन पर देदीप्यमान मुकुट के धारक प्रमुख देव बैठे थे ऐसी शंख और पद्म नामक दो निधियाँ चलती थीं। ये निधियाँ समस्त जीवों को इच्छित वस्तुएँ प्रदान करने वाली थीं तथा सुवर्ण और रत्नों की वर्षा करती जाती थीं ॥

भास्वत्फणामणि ज्योतिर्दीपिका भान्ति पन्नगाः ।
हतान्धतमस ज्ञान दीप दीप्त्यनुकारिणः ॥64॥

उनके आगे फणाओं पर चमकते हुये मणियों की किरणरूपदीपकों से युक्त नागकुमार जाति के देव चलते थे और वे अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाले केवलज्ञानरूपी दीपक की दीप्तिका अनुकरण करते हुए से जान पड़ते थे।

विश्वे वैश्वानरा यान्ति धृतधूपघटोद्धताः ।
यद्गन्धो याति लोकान्तं जिनगन्धस्य सूचकः ॥ 65 ॥

उनके आगे धूपघटों को धारण करने वाले समस्त अग्निकुमार देव चल रहे थे। उन धूपघटों की गन्ध लोक के अन्त तक फैल रही थी और वह जिनेन्द्र भगवान् की गन्ध से सूचित कर रही थी।

सौम्याग्नेयगुणा देवभक्ताः सोमदिवाकराः ।
स्वप्रभामण्डलादर्शमङ्गलानि वहन्त्यहो ॥ 66 ॥

तदन्तर शान्त और तेजरूप गुण को धारण करने वाले, भगवान् के भक्त, चन्द्र और सूर्य जाति के देव अपनी प्रभा के समूह रूप मंगलमय दर्पण को धारण करते हुए चल रहे थे।

तपनीयमयैश्छत्रैर्नभस्तपनरोधिभिः ।
तपनैरेव सर्वत्र संरुद्धमिव दृश्यते ॥ 67 ॥

उस समय सन्ताप को रोकने के लिये सुवर्णमय छत्र लगाये गये थे, उनसे सर्वत्र ऐसा जान पड़ता था मानो आकाश सूर्यों से ही व्याप्त हो रहा हो।

पताकाहस्तविक्षेपैः संतर्ज्य परवादिनः ।
दयामूर्ता इवेशांसा नृत्यन्ति जयकेतवः ॥ 68 ॥

जगह-जगह विजय स्तम्भ दिखाई दे रहे थे, उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो पताकारूपी हाथों के विक्षेप से पर-वादियों को परास्त कर दयारूपी मूर्ति को धारण करने वाले भगवान् के मानो कन्धे ही नृत्य कर रहे हों।

वैभवी विजयाख्यातिर्वैजयन्ती पुरेडिता ।
राजते त्रिजगन्नेत्रकुमुदामलचन्द्रिका ।। 69 ।।

आगे-आगे भगवान् की विजय पताका फहराती हुई सुशोभित थी जो मानो ऐसी जान पड़ती थी कि तीन जगत् के नेत्ररूपी कुमुदों को विकसित करने के लिए निर्मल चाँदनी ही हो ।

बिहारावसर में नृत्य एवं स्तुति

भुवः स्वर्भूर्निवासिन्यो भुवि यद्व्यन्तरा स्थिताः ।
नरीनृत्यन्ति देव्योऽग्रे प्रेमानन्दरसाष्टकम् ।। 70 ।।

जो देवियाँ अधोलोक और ऊर्ध्वलोक में निवास करती हैं तथा पृथ्विवी पर नाना स्थानों में निवास करने वाली हैं वे भगवान् के आगे प्रेम और आनन्द से आठ रस प्रकट करती हुई नृत्य कर रही थीं ।

आमन्द्रमधुरध्वानाव्याप्तदिग्विदिगन्तरा ।
धीरं नानद्यते नान्दी जित्वा प्रावृड्घनावलीम् ।। 71 ।।

जिसने अपनी गम्भीर और मधुर ध्वनि से समस्त दिशाओं और विदिशाओं के अन्तर को व्याप्त कर रखा था ऐसी नान्दी-ध्वनि (भगवत्स्तुति की ध्वनि) वर्षा ऋतु की मेघावली को जीतकर बड़ी गम्भीरता से बार-बार हो रही थी ।

धर्म चक्री की धर्म विजय का धर्म चक्र—

जितार्को धर्मचक्रार्कः सहस्रारांशुदीधितिः ।
याति देवपरीवारो वियतातितमोपहः ।। 72 ।।

जिसने अपनी प्रभा से सूर्य को जीत लिया था, जो हजार अररूप किरणों से सहित था, देवों के समूह से घिरा हुआ था और अत्यधिक अन्धकार को नष्ट कर रहा था ऐसा धर्मचक्र आकाश मार्ग से चल रहा था ।

शरणक्षता की शरण में आओ—

लोकनामेक नाथोऽयमेतैत नमतेति च ।
घुष्यते स्तनितैरग्रैर्घोषणाभयघोषणा ।। 73 ।।

आगे-आगे चलने वाले स्तनितकुमार देव अभय घोषणा के साथ-साथ यह घोषणा करते जाते थे कि ये भगवान् तीन लोक के स्वामी हैं, आओ, आओ और इन्हें नमस्कार करो ।

सर्वाश्चर्य की प्राप्ति—

देवयात्रामिमां दिव्यामन्वेत्य परमाद्भुताम् ।
अद्भुतान्वर्थं दृष्ट्यादिसर्वाण्य सुभूतां भुवि ।। 75 ।।

जो जीव अनेक आश्चर्यों से भरी हुई भगवान् की इस दिव्य यात्रा में साथ-साथ जाते थे, पृथिवी पर उन्हें अर्थ-दृष्टि को आदि लेकर समस्त आश्चर्यों की प्राप्ति

होती थी। भावार्थ—उन्हें चाहे जहाँ धन दिखाई देना आदि अनेक आश्चर्य स्वयं हो जाते थे।

हर्षमय सर्व जीव—

आधयो नैव जायन्ते व्याधतो व्यापयन्ति न।
ईतयश्चाज्ञया भर्तुर्नेति तद्देशमण्डले ॥ 76 ॥

जिस देश में भगवान् का विहार होता था उस देश में भगवान् की आज्ञा न होने से ही मानो किसी को न तो आधि-व्याधि-मानसिक और शारीरिक पीड़ाएँ होती थीं और न अतिवृष्टि आदि ईतियाँ ही व्याप्त होती थीं।

अन्धाः पश्यन्ति रूपाणि शृण्वन्ति वधिराः श्रुतिम्।
मूकाः स्पष्टं प्रभाषन्ते विक्रमन्ते च पङ्गवः ॥ 77 ॥

वहाँ अन्धे रूप देखने लगते थे, बहरे शब्द सुनने लगते थे, गूँगे स्पष्ट बोलने लगते थे और लँगड़े चलने लगते थे।

सुखदायी प्रकृति—

नात्युष्णा नातिशीताः स्युरहोरात्राविवृत्तयः।
अन्यच्चा,शुभमत्येति शुभं सर्वं प्रवर्धते ॥ 78 ॥

वहाँ न अत्यधिक गरमी होती थी, न अत्यधिक ठण्ड पड़ती थी, न दिन-रात का विभाग होता था, और न अन्य अशुभ कार्य अपनी अधिकता दिखला सकते थे। सब ओर शुभ ही शुभ कार्यों की वृद्धि होती थी।

त्रस स्थावरकाः सर्वे सुखं विन्दन्ति देहिनः।
सैषा विश्वजनीना हि विभुता भुवि वर्तते ॥ 85 ॥

भगवान् के विहार-क्षेत्र में स्थित समस्त त्रस, स्थावर जीव सुख को प्राप्त हो रहे थे सो ठीक ही है क्योंकि संसार में विभुता वही है जो सबका हित करने वाली हो।

भूवधूः सर्व सम्पन्नसस्यरोमाञ्चकञ्चुका।
करोत्यम्बुज हस्तेन भर्तुः पादग्रहं मुदा ॥ 79 ॥

उस समय सर्व प्रकार की फली-फूली धान्यरूपी रोमांच को धारण करने वाली पृथ्वीरूपी स्त्री कमलरूपी हाथों के द्वारा बड़े हर्ष से भगवान् रूपी भर्तार के पादमर्दन कर रही थी।

जिनार्कपाद संपर्क प्रोत्फुल्लकमलावलीम्।
प्रथयत्युद्वहन्ती द्यौरस्थायिसरसीश्रियम् ॥ 80 ॥

जिनेन्द्र रूपी सूर्य के पादरूपी किरणों के सम्पर्क से फूली हुई कमलावली को धारण करने वाला आकाश उस समय चलते-फिरते तालाब की शोभा को विस्तृत कर रहा था।

सर्वेऽत्युक्ताः समात्मानः समदृष्टेश्वरेक्षिताः।
ऋतवः सममेधन्ते निर्विकल्पा हि सेशिता ॥ 81 ॥

उस समय बिना कहे ही समस्त ऋतुएँ एक साथ वृद्धि को प्राप्त हो रही थीं, सो ऐसी जान पड़ती थीं मानो समदृष्टि भगवान् के द्वारा अवलोकित होने पर वे समरूपी ही हो गयी थीं। यथार्थ में स्वामीपना तो वही है जिसमें किसी के प्रति विकल्प-भेदभाव न हो।

निधानानि निधीरन्नान्याकराण्यमृतानि च।
सूयते तेन विख्याता रत्नसूरिति मेदिनी॥ 82॥

उस समय पृथ्वी जगह-जगह अनेक खजाने, निधियाँ, अन्न, खानें और अमृत उत्पन्न करती थीं इसलिए 'रत्नसू' इस नाम से प्रसिद्ध हो गयी थी।

अन्तकोऽन्तकजिद्वीर्यपराजितपराक्रमः।
धर्म चक्रोजिते लोके नाकाले करमिच्छति॥ 83॥

अन्तकजित्-यमराज को जीतने वाले भगवान् के वीर्य से जिसका पराक्रम पराजित हो गया था ऐसा यमराज, धर्म चक्र से सबल संसार में असमय में करग्रहण करने की इच्छा नहीं करता था। भावार्थ—जहाँ भगवान् का धर्म चक्र चलता था वहाँ किसी का असमय में मरण नहीं होता था।

कालः कालहरस्याज्ञामनुकूलभयादिव।
प्रविहाय स्ववैषम्यं पूज्येच्छामनुवर्तते॥ 84॥

काल (यम) को हरने वाले हैं (पक्ष में समय को हरने वाले) भगवान् की आज्ञा के विरुद्ध आचरण न हो जाये, इस भय से काल (समय) अपनी विषमता को छोड़कर सदा भगवान् की इच्छानुसार ही प्रवृत्ति करता था। भावार्थ—काल, सर्दी-गर्मी, दिन-रात आदि की विषमता छोड़ सदा एक समान प्रवृत्ति कर रहा था।

जन्मजात वैरी में भी मित्रता—

जन्मानुबन्ध वैरो यः सर्वोऽहिन कुलादिकः।
तस्यापि जायतेऽजर्यं संगतं सुगताज्ञता॥ 86॥

जो साँप, नेवला आदि समस्त जीव जन्म से ही वैर रखते थे उन सभी में भगवान् की आज्ञा से अखण्ड मित्रता हो गयी थी।

सुगन्ध बयार—

गन्धवाहो वहद्गन्धं भर्तुस्तं कथमाप्नुयात्।
अचण्डः सेवते सेवां शिक्षयन्ननुजीविनः॥ 87॥

भगवान् की बहती हुई गंध को, पवन किस प्रकार प्राप्त कर सकता है इस प्रकार अनुजीवी जनों को सेवा की शिक्षा देता हुआ वह शांत होकर भगवान् की सेवा कर रहा था। भावार्थ—उस समय शीतल, मंद सुगन्धित पवन भगवान् की सेवा कर रहा था सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह सेवक जनों को सेवा करने की शिक्षा ही दे रहा था।

पशु से भी नमस्करणीय चतुरानन—

दूराच्चाल्पधियः सर्वे नमन्ति किमुतेतरे ।
चतुरास्यश्चतुर्दिक्षु छायादिरहितो विभुः ।। 90 ।।

उस समय अन्य की तो बात ही क्या थी अल्पबुद्धि के धारक तिर्यञ्च आदि समस्त प्राणी भगवान् को दूर से ही नमस्कार करते थे । भगवान् चतुर्मुख थे इसलिए चारों दिशाओं में दिखाई देते और छाया आदि से रहित थे ।

शुभं यवो नमन्त्येत्याहंयवोऽपि प्रवादिनः ।
अवसानादुद्भुतं चैतन्निर्द्वन्द्वं प्राभवं हि तत् ।। 92 ।।

जिनका कल्याण होने वाला था ऐसे प्रवादी लोग, अहंकार से युक्त होने पर भी आ-आकर भगवान् को नमस्कार करते थे सो ठीक ही है क्योंकि उन जैसा प्रभाव अन्त में आश्चर्य करने वाला एवं प्रतिपक्षी से रहित होता ही है।

दिक्पाल द्वारा सम्मान

यस्यां यस्यां दिशीशः स्यात्त्रिदशेशपुरस्सरः ।
तस्यां तस्यां दिशीशाः स्युः प्रत्युद्याताः सपूजनाः ।। (93) ।।

जिनके आगे-आगे इन्द्र चल रहा था ऐसे भगवान् जिस-जिस दिशा में पहुँचते थे उसी-उसी दिशा के दिक्पाल पूजन की सामग्री लेकर भगवान् की अगवानी के लिए आ पहुँचते थे ।

यतो यतश्च यातीशस्तदीशाश्च समङ्गलाः ।
अनुयान्त्याच्च सीमानः सार्वभौमो हि तादृशः ।। (94) ।।

भगवान् जिस-जिस दिशा से वापिस जाते थे उस-उस दिशा के दिक्पाल मङ्गल द्रव्य लिए हुए अपनी-अपनी सीमा तक पहुँचाने आते थे सो ठीक ही है क्योंकि भगवान् उसी प्रकार के सार्वभौम थे—समस्त पृथिवी के अधिपति थे ।।

अद्भुत तेजपूर्ण कांतिदण्ड

तस्यामेकः समुतुङ्गो भादण्डो दण्डसन्निभः ।
अधरोपरिलोकान्तः प्राप्तः प्रत्यागतांशुभिः ।। (96) ।।

उस देवसेना के बीच दण्ड के समान बहुत ऊँचा कान्तिदण्ड विद्यमान था जो नीचे से लेकर ऊपर लोक के अन्त तक फैला था और वापिस आयी हुई किरणों से युक्त था ।

त्रिगुणीकृततेजस्कः स्थूलदृश्यःस्वतेजसा :
भासते भास्करादन्याज्ज्योतिष्टोमतिरस्करः ।। (97) ।।

अन्य तेजधारियों की अपेक्षा उस कान्तिदण्ड का तेज तिगुना था । अपने तेज के द्वारा वह बड़ा स्थूल दिखाई देता था और सूर्य के सिवाय अन्य ज्योतिषियों के समूह को तिरस्कृत करने वाला था ।

आलोको यस्य लोकान्तव्यापी निःप्रतिबन्धनः ।
ध्वस्तान्धतमसो भास्वत्प्रकाशमतिवर्तते ।। (98) ।।

उस कान्तिदण्ड का प्रकाश लोक के अन्त तक व्याप्त था, रुकावट से रहित था, गाढ़ अन्धकार को नष्ट करने वाला था, और सूर्य के प्रकाश को अतिक्रान्त करने वाला था।

तस्यान्ततेजसो भर्ता तेजोमय इवापरः ।
रश्मिमालिसहस्रैकरुपाकृतिरनाकृतिः ॥99॥
परितो भामिसत्सर्पद्धनो भर्तुर्महोदयः ।
भासिगव्यूतिविस्तारो युक्तोच्छ्रायस्तनूद्भवः ॥100॥
दृश्यते दृष्टिहारीव सुखदृश्यः सुखावहः ।
पुण्यमूर्तिस्दतन्तस्थः पूज्यते पुरुषाकृतिः ॥ (101) ॥

उस कान्तिदण्ड के बीच में पुरुषाकार एक ऐसा दूसरा कान्तिसमूह दिखायी देता था जो तेज का धारक था, अन्य तेजोयय के समान जान पड़ता था, एक हजार सूर्य के समाकान्ति धारक था, जिससे बढ़कर और दूसरी आकृति नहीं थी, जो चारों ओर फैलने वाली कान्ति से घनरूप था, भगवान् के महान् अभ्युदय के समान था, जिसकी कान्ति का विस्तार एक कोस तक फैल रहा था, जो भगवान् की ऊँचाई के बराबर ऊँचा था, दृष्टि को हरण करने वाला था, सुखपूर्वक देखा जा सकता था, सुख को उत्पन्न करने वाला था, पुण्य की मूर्ति स्वरूप था और सबके द्वारा पूजा जाता था।

काधियोऽपुण्यजन्मानः स्वापुण्यजरुषान्विताः ।
न पश्यन्ते च तद्भासं भानुभासमुलूकवत् ॥102॥

जिस प्रकार उल्लू सूर्य की प्रभा को नहीं देख पाते हैं उसी प्रकार दुर्बुद्धि, पापी एवं अपने पाप से उत्पन्न क्रोध से युक्त पुरुष उस कान्ति समूह को नहीं देख पाते हैं।

तिरयन्ती रवेस्तेजः पूरयन्ती दिशोऽखिलाः ।
तत्प्रभा भानवीयेव पूर्वं व्याप्नोति भूतलम् ॥103॥

उस क्रान्ति समूह में से एक विशेष प्रकार की प्रभा निकलती थी जो सूर्य के तेज को आच्छादित कर रही थी, समस्त दिशाओं को पूर्ण कर रही थी और सूर्य की प्रभा के समान पृथिवी तल को पहले से व्याप्त कर रही थी।

तस्याश्चानुपदं याति लोकेशो लोकशान्तये ।
लोकानुद्भासयन् सर्वानतिदीधितिमत्प्रभः ॥104॥

उस प्रभा के पीछे, जो समस्त लोकों को प्रकाशित कर रहे थे तथा जिनकी प्रभा अत्यधिक किरणों से युक्त थी ऐसे भगवान् नेमि जिनेन्द्र-लोक शान्ति के लिये—संसार में शान्ति का प्रसार करने के लिये बिहार कर रहे थे।

एक वर्ष तक चिन्ह से युक्त मार्ग

आसंवत्सरमात्माङ्कैः प्रथयन्प्राभवीं गतिम् ॥
भासते रत्नवृष्ट्याश्वाभरोत्यैरावतो यथा ॥105॥

जिस मार्ग में भगवान् का बिहार होता था, वह मार्ग अपने चिह्नों से एक वर्ष तक यह प्रकट करता रहता था कि यहाँ भगवान् का विहार हुआ है तथा रत्नवृष्टि से वह मार्ग ऐसा सुशोभित होता था जैसा नक्षत्रों के समूह से ऐरावत हाथी सुशोभित होता है ।

अनुबन्धावनिप्रख्यं दिवि मार्गादि दृश्यते ।
त्रिलोकातिशयोद्भूतं तद्धि प्राभवमद्भुतम् ॥106॥

जिस प्रकार विहार के सम्बन्ध रखने वाली पृथिवी में मार्ग आदि दिखलाई देते हैं उसी प्रकार आकाश में भी मार्ग आदि दिखाई देते हैं क्योंकि सो ठीक ही है तीन लोक के अतिशय से उत्पन्न भगवान का वह अतिशय ही आश्चर्यकारी था ।

शान्ति उपचय हिंसा उपचय

पटूभवन्ति मन्दाश्च सर्वे हिंस्रास्त्वपर्धयः ।
खेदस्वेदार्तिचिन्तादि न तेषामस्ति तत्क्षणे ॥107॥

उस समय मन्द बुद्धि मनुष्य तीक्ष्ण बुद्धि के धारक हो गये थे । समस्त हिंसक जीव प्रभावहीन हो गये थे और भगवान् के समीप रहने वाले लोगों को खेद, पसीना, पीड़ा तथा चिन्ता आदि कुछ भी उपद्रव नहीं होता था ।

बिहार भूमि में 5 वर्ष तक उपद्रव शून्य

विहारानुगृहीतायां भूमौ न डमरादयः ।
दशाभ्यस्तयुगं (?) भर्तुरहोऽत्र महिमा महान् ॥108॥

भगवान् के बिहार से अनुगृहीत भूमि में दो सौ योजन तक त्रिप्लव आदि नहीं होते थे । अथवा दश से गुणित युग अर्थात् 50 वर्ष तक उस भूमि में कोई उपद्रव आदि नहीं होते थे । भावार्थ—जिस भूमि में भगवान् का विहार होता था वहाँ 50 वर्ष तक कोई उपद्रव दुर्भिक्ष आदि नहीं होता था यह भगवान् की बहुत भारी महिमा ही समझनी चाहिये ।

आ० समन्तभद्र स्वामी ने तीर्थंकर के अलौकिक गुण के बारे में कहा है—

प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत् ।
मोक्षमार्गमशिषन् नरामरान् नापि शासन फलैषणाऽऽतुरः ॥73॥

आप सिंहासनादि आठ प्रातिहार्य की विभूति से श्रृंगारित हो । तथापि शरीर से भी आप विरक्त हो । आप मानव व देवों को रत्नमयी मोक्ष मार्ग का उपदेश करते हुए भी अपने उपदेश के फल की इच्छा से जरा भी आतुर न हुए ।

कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो, नाऽभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया ।
नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो, धीर ! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥74॥

आप प्रत्यक्ष ज्ञानी हैं । आपकी मन, वचन काय की प्रवृत्तियाँ आपको करने की इच्छापूर्वक और न आपकी चेष्टायें अज्ञानपूर्वक हुई । हे धीर ! आपकी क्रिया का चिंतवन नहीं हो सकता । आपका कार्य अचिंत्य है ।

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्, देवतास्वपि च देवता यतः ।
तेन नाथ परमाऽसि देवता, श्रेयसे जिनवृष ! प्रसीद नः ॥ 75॥

क्योंकि आपने साधारण मनुष्य के स्वभाव को उल्लंघन कर लिया है तथा जगत के सब देशों में भी आप पूज्य हैं। हे नाथ ! इस कारण से आप सर्वोकष्ट देव हैं। हे धर्मनाथ जिनेन्द्र ! मोक्ष के लिये हम लोगों पर प्रसन्न हूजिये।

विश्व के सातिशय अद्वितीय तीर्थंकर पुण्यकर्म के उदय से तेरहवां गुणस्थान वर्ती अरिहंत तीर्थंकर भगवान् बनते हैं। आध्यात्मिक प्रमाण के साथ-साथ तीर्थंकर पुण्य प्रभाव से संयुक्त तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकर साक्षात् आध्यात्मिक एवं भौतिक वैभव शक्ति एवं चमत्कार के पुंज स्वरूप होते हैं। चैतन्य शक्ति का पूर्ण विकास उस अवस्था में हो जाता है। तीर्थंकर के पुण्य कर्म के प्रभाव, शक्ति एवं चमत्कार सर्वाधिक होता है। भौतिक शक्ति की चर्मसीमा तीर्थंकर पुण्यकर्म है, इस प्रकार कहने पर कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आत्मा में जो अनन्त शक्तियाँ हैं, उसका भी पूर्ण विकास उस अवस्था में हो जाता है। विज्ञ पाठकों को ज्ञात होगा कि आत्मा में जैसे-जैसे अनंत शक्ति निहीत है, उसी प्रकार पुद्गल में भी है। विद्युत-शक्ति, रेडियो, टी. वी. एटमबम, कम्प्यूटर आदि वैज्ञानिक चमत्कार पूर्ण यन्त्र केवल पुदगल ही हैं। केवल पुदगल से कितने आश्चर्य पूर्ण कार्य हो सकता है, तब अनन्त शक्ति के पुंज स्वरूप आत्मा एवं पुद्गल के संयोग से तीर्थंकर के उपरोक्त अलौकिक चमत्कारपूर्ण अद्वितीय कार्य होने में क्या असम्भव है। जब तक हम द्रव्यों में निहीत अनेक वैचिपूर्ण अनन्त शक्तियों के बारे में नहीं जानते हैं, तब तक कोई विशेष सत्य घटना को असम्भव अतिरंजित मानते हैं, परन्तु जब वस्तु स्वरूप को यथार्थ से परिज्ञान करते हैं तब आश्चर्य ही नहीं रहता है, विशेषतः अल्पज्ञ जड़ बुद्धि वाले मूर्ख संकुचित विचार वालों के लिये कोई एक सत्य घटना अविश्वसनीय आश्चर्य असम्भव प्रतीत होता है। "ज्ञानीनाम् किम् आश्चर्यम्" अर्थात् ज्ञानियों के लिये कोई सत्य तत्यपूर्ण घटना आश्चर्यकारी प्रतीत नहीं होती है।

अध्याय

4

राजनैतिक क्रान्ति के अग्रदूत

चक्रवर्तियों के राज्य-काल का प्रमाण

मरहे छः-लक्ख-पुव्वा, इगिसट्ठी-सहस्स-वास परिहीणा।
तीस-सहस्सूणाणि, सत्तरि लक्खाणि पुव्व सगरम्मि ।।1413।।

भरत चक्रवर्ती के (राज्य-काल का प्रमाण) इकसठ हजार वर्ष कम छह लाख पूर्व और सगर चक्रवर्ती के राज्य-काल का प्रमाण तीस हजार वर्ष कम सत्तर लाख पूर्व प्रमाण हैं—ति० प० अ० 4

णउदि-सहस्स-जुदाणि, लक्खाणि तिण्णि मघव-णामम्मि।
णउदि-सहस्सा वासं, सणक्कुमारम्मि चक्कहरे ।।1414।।

मघवा नामक चक्रवर्ती का राज्यकाल तीन लाख नब्बे हजार वर्ष और सनत्कुमार चक्रवर्ती का राज्यकाल नब्बे हजार वर्ष प्रमाण हैं।

चउवीस-सहस्साणि, वासाणि दो-सयाणि संतिम्मि।
तेतीस-सहस्साइं, इगि-सय-पण्णाहियाइ कुंथुम्मि ।।1415।।

शान्तिनाथ चक्रवर्ती के राज्य-काल का प्रमाण चौबीस हजार दो सौ वर्ष और कुन्थुनाथ के राज्य-काल का प्रमाण तेईस हजार एक सौ पचास वर्ष हैं।

वीस-सहस्सा वस्सा, छस्सय-जुत्ता अरम्मि चक्कहरे।
उणवण्ण-सहस्साइं, पण-सय-जुत्ता सुभउमम्मि ।।1416।।

अरहनाथ चक्रधर का राज्य-काल बीस हजार छः सौ वर्ष और सुभौम चक्रवर्ती का राज्यकाल उनचास हजार पाँच सौ वर्ष प्रमाण हैं।

अट्ठरस-सहस्साणि, सत्त-सएहिं समं तहा पउमो।
अट्ठ-सहस्सा अड़-सय, पण्णब्भहिया य हरिषेणे ।।1417।।

पद्म चक्रवर्ती के राज्यकाल का प्रमाण अठारह हजार सात सौ वर्ष और हरिषेण चक्रवर्ती के राज्यकाल का प्रमाण आठ सौ पचास अधिक आठ हजार वर्ष है।

उणवीस-सया वस्सा, जयसेणे बम्हदत्त-णामम्मि।
चक्कहरे छः-सयाणि, परिमाणं रज्जकालस्स ।।1418।।

जयसेन चक्रवर्ती के राज्यकाल का प्रमाण उन्नीस सौ वर्ष और ब्रह्मदत्त नामक चक्रधर के राज्यकाल का प्रमाण छः सौ वर्ष हैं।

चक्रवर्तियों का संयम-काल

एक्केक्क-लक्ख-पुव्वा, पुण्णास-सहस्स वच्छरा लक्खं ।
पणवीस-सहस्साणि, तेतीस-सहस्स-सत्त-सय-पण्णा ॥1419॥
इगिवीस-सहस्साइं, तत्तो सुण्णं च दस सहस्साइं ।
पण्णाहिय-तिण्ण-सया, चत्तारि सयाणि सुण्णं च ॥1420॥
कमसो भरहादीणं, रज्ज-विरत्ताण चक्कवट्टीणं ।
णिव्वाण-लाह-कारण-संजम-कालस्स परिमाणं ॥1421॥

राज्य से विरक्त भरतादिक चक्रवर्तियों के निर्वाण-लाभ के कारणभूत संयम-काल का प्रमाण क्रमशः एक लाख पूर्व, एक लाख पूर्व, पचास हजार वर्ष, एक लाख वर्ष, पच्चीस हजार वर्ष, तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष, इक्कीस हजार वर्ष, फिर शून्य, दस हजार वर्ष, तीन सौ पचास वर्ष, चार सौ वर्ष और शून्य हैं।

भरतादिक चक्रवर्तियों की पर्यायान्तर प्राप्ति

अट्ठेव गया मोक्खं, बम्ह-सुभउमा य सत्तमं पुढविं ।
मघवो सणक्कुमारो, सणक्कुमारं गओ कप्पं ॥1422॥

इन बारह चक्रवर्तियों में से आठ चक्रवर्ती मोक्ष को, ब्रह्मदत्त और सुभौम चक्रवर्ती सातवीं पृथ्वी को तथा मघवा एवं सनत्कुमार चक्रवर्ती सनत्कुमार नामक तीसरे कल्प को प्राप्त हुए हैं।

बलदेव, नारायण एवं प्रतिनारायणों के नाम

विजओ अचलो धम्मो, सुप्पहणामो सुदंसणो णंदी ।
णंदिमित्तो य रामो, पउमो णव होंति बलदेवा ॥1423॥

विजय, अचल, धर्म, सुप्रभ, सदर्शन, नन्दी, नन्दिमित्र, राम और पद्म ये नौ बलदेव हुए हैं।

होंति तिविट्ठ-दुविट्ठा, संयभु-पुरिसुत्तमा य पुरिससिंहो ।
पुरिसवर-पुंडरीओ, दत्तो णारायणो किण्हो ॥1424॥

त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभु, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुष पुण्डरीक, पुरुषदत्त, नारायण (लक्ष्मण) और कृष्ण ये नौ नारायण हुए हैं।

अस्सग्गीतो तारग-मेरग-मधुकीटभा णिसुंभो य ।
बलि-पहरणो य रावण-जरसंधा णव य पड़िसत्तू ॥1425॥

अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुम्भ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासंध ये नौ प्रतिशत्रु (प्रति नारायण) हुए हैं।

पंच जिणिंदे वदंति, केसवा पंच आणुपुव्वीए ।
सेयंससामि-पहुदिं, तिविट्ठ-पमुहा य पत्तेक्कं ॥1426॥

त्रिपृष्ठ आदिक पाँच नारायणों में से प्रत्येक नारायण क्रमशः श्रेयांस स्वामी आदिक पाँच तीर्थंकरों की वन्दना करते हैं। (प्रारम्भ के पाँच नारायण क्रमशः श्रेयांसनाथ आदि पाँच तीर्थंकरों के काल में ही हुए हैं।)

अर-मल्लि-अंतराले, णादव्यो पुंडरीय-णामो सो ।
मल्लि-मुणिसुव्वयाणं, विच्चाले दत्त-णामो सो ॥1247॥

अर और मल्लिनाथ तीर्थंकर के अन्तराल में वह पुण्डरीक तथा मल्लि और मुनिसुव्रत के अन्तराल में दत्त नामक नारायण जानना चाहिए।

सुव्वल-णमि- सामीणं, मज्झे णारायणो समुप्पण्णो ।
णेमि-समयम्मि किण्णो, एदे णव वासुदेवा य ॥1428॥

मुनिसुव्रत नाथ और नमिनाथ स्वामी के मध्यकाल में नारायण (लक्ष्मण) तथा नेमिनाथ स्वामी के समय में कृष्ण नामक नारायण उत्पन्न हुए थे। ये नौ वासुदेव भी कहलाते हैं।

दस सुण्ण पंच केसव, छस्सुण्णा केसि सुण्ण केसीओ ।
तिय-सुण्णमेक्क-केसी, दो सुण्णं एक्क केसि तिय सुण्णं ॥1429॥

क्रमशः दस शून्य, पाँच नारायण, छह शून्य, नारायण, शून्य, नारायण, तीन शून्य, एक नारायण, दो शून्य, एक नारायण और अन्त में तीन शून्य हैं। (इस प्रकार नौ नारायणों की संदृष्टि का क्रम जानना चाहिए। संदृष्टि में अंक एक तीर्थंकर का, अंक 2 चक्रवर्ती का, अंक 3 नारायण का और शून्य अन्तराल का सूचक है।)

नारायणादि तीनों के शरीर का उत्सेध

सीदी सत्तरि सट्ठी, पण्णा पणदाल ऊणतीसाणि ।
बावीस-सोल-दस-धणु, केस्सीतिदयम्मि उच्छेहो ॥1430॥

केशवत्रितय-नारायण, प्रतिनारायण एवं बलदेवों के शरीर की ऊँचाई क्रमशः अस्सी, सत्तर, साठ, पचास, पैंतालीस, उनतीस, बाईस, सोलह और दस धनुष प्रमाण थी।

नारायणादि तीनों को आयु

सगसीदी सत्तत्तरि सग-सट्ठी सत्तत्तीस सत्त-दसा ।
वस्सा लक्खाण-हदा, आऊ विजयादि-पंचण्हं ॥1431॥
सगसट्ठी सगतीसं, सत्तरस-सहस्स बारस-सयाणि ।
कमसो आउ-पमाणं, णंदि-प्पमुहा-चउक्कम्मि ॥1432॥

विजयादिक पाँच बलदेवों की आयु क्रमशः सतासी लाख, सतत्तर लाख, सड़सठ लाख, सैंतीस लाख और सत्तरह लाख वर्ष प्रमाण थी तथा नन्दि-प्रमुख चार बलदेवों की आयु क्रमशः सड़सठ हजार, सैंतीस हजार, सत्तरह हजार और बारह सौ वर्ष-प्रमाण थी।

चुलसीदी बाहत्तरि-सट्ठी तीसं दसं च लक्खाणि ।
पणसट्ठि-सहस्साणि, तिविट्ठ-छक्के कमे आऊ ॥1433॥
बत्तीस-बारसेक्कं, सहस्समाऊणि दत्त-पहुदीणं ।
पड़िसत्तु-आउ-माणं, णिय-णिय णारायणाउ-समा ॥1434॥

त्रिपृष्ठादिक छह नारायणों की आयु क्रमशः चौरासी लाख, बहत्तर लाख, साठ लाख, तीस लाख, दस लाख और पैंसठ हजार प्रमाण थी तथा दत्त-प्रभृति शेष तीन नारायणों की आयु क्रमशः बत्तीस हजार, बारह हजार और एक हजार वर्ष प्रमाण थी। प्रतिशत्रुओं की आयु का प्रमाण अपने-अपने नारायणों की आयु के सदृश हैं।

एदे णव पड़िसत्तू, णवाण हत्थेहि वासुदेवाणं।
णिय-चक्केहि रणेसुं, समाहदा जंति णिरय-खिदि ॥1435॥

ये नौ प्रतिशत्रु युद्ध में क्रमशः नौ वासुदेवों के हाथों से अपने ही चक्रों के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होकर नरकभूमि में जाते हैं।

नारायणों का कुमार काल, मण्ड़लीक काल, विजय काल और राज्य काल

पणुवीस-सहस्साइं, वासा कोमार-मंडलित्ताइं।
पढ़म-हरिस्स, कमेणं, वास-सहस्सं विजय-कालो ॥1436॥

प्रथम (त्रिपृष्ठ) नारायण का कुमार काल पच्चीस हजार वर्ष, मण्ड़लीक-काल पच्चीस हजार वर्ष और विजय काल एक हजार वर्ष प्रमाण हैं।

तेसीदिं लक्खाणिं, उणवण्ण-सहस्स-संजुदाइं पि।
वरिसाणि रज्जकालो, णिद्दिट्ठो पढ़म-किण्हस्स ॥1437॥

प्रथम नारायण का राज्य-काल तेरासी लाख उनचास हजार वर्ष प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है।

कोमार-मंडलित्ते, ते च्चिय बिदिए जवो विवास-सदं।
इगिहत्तरि-लक्खाइं, उणवण्ण-सहस्स-णव-सया रज्जं ॥1438॥

द्वितीय नारायण का कुमार और मण्ड़लीक-काल उतना ही (प्रथम नारायण के सदृश पच्चीस-पच्चीस हजार वर्ष, जयकाल सौ वर्ष) और राज्यकाल इकत्तर लाख उनचास हजार नौ सौ वर्ष प्रमाण कहा गया हैं।

बिदियादो अद्धाइं, सयंभुकोमार-मण्डलित्ताणिं।
विजओ णउदी रज्जं, तिय-काल-विहीण-सट्ठि-लक्खाइं ॥1439॥

स्वयम्भू नारायण का कुमार काल और मण्ड़लीक-काल द्वितीय नारायण से आधा (बारह हजार पाँच सौ वर्ष), विजय काल नब्बे वर्ष और राज्यकाल इन तीनों (कुमार काल 12500 + म० का० 12500 + विजय० 90 = 25090 वर्ष) कालों से रहित साठ लाख (6000000 – 25090 = 5974910) वर्ष कहा गया हैं।

तुरिमस्स सत्त तेरस, सयाणि कोमार-मण्ड़लित्ताणिं।
विजओ सीदी रज्जं, तिय-काल-विहीण-तीस-लक्खाइं ॥1440॥

चतुर्थ नारायण का कुमार और मण्ड़लीक काल क्रमशः सात सौ और तेहर सौ वर्ष, बिजयकाल अस्सी वर्ष तथा राज्यकाल इन तीनों (कु० 700 + म० 1300

+वि० 80=2080) कालों से रहित तीस लाख (3000000–2080=2997920) वर्ष प्रमाण कहा गया हैं।

कोमारो तिण्णिसया, बारस-सह-पण्ण मंडलीयत्तं।
पंचम विजयो सत्तरि, रज्जं तिय-काल-हीण-दह-लक्खा ॥1441॥

पाँचवें नारायण का कुमार काल तीन सौ वर्ष, मण्डलीक-काल बारह सौ पचास वर्ष, विजय-काल सत्तर वर्ष और राज्य काल इन तीनों (कु० 300+म० 1250+वि० 70=1620) कालों से रहित दस लाख (1000000—1620=998380) वर्ष प्रमाण कहा हैं।

कोमार-मंडलित्ते, कमसो छट्ठे सपण्ण-दोण्णि-सया।
विजयो सट्ठी रज्जं, चउसट्ठि-सहस्स-चउसया तालं ॥1442॥

छट्ठे पुण्डरीक नारायण का कुमार और मण्डलीक काल क्रमशः दो सौ पचास वर्ष, विजय काल साठ वर्ष और राज्यकाल चौंसठ हजार चार सौ चवालीस वर्ष प्रमाण हैं।

कोमारो दोण्णि सया, वासा पण्णास मंडलीयत्तं।
दत्ते विजयो पण्णा, इगितीस-सहस्स-सग-सया रज्जं ॥1443॥

दत्त नारायण का कुमार काल दो सौ वर्ष, मण्डलीक काल पचास वर्ष, विजयकाल पचास वर्ष और राज्यकाल इकतीस हजार सात सौ वर्ष प्रमाण कहा गया हैं।

अट्ठमए इगि-ति-सया, कमेण कोमार-मंडलीयत्तं।
विजयं चाक्षं रज्जं, एक्करस-सहस्स-पण-सया सट्ठी ॥1444॥

आठवें नारायण का कुमार और मण्डलीक काल क्रमशः एक सौ और तीन सौ वर्ष, विजय-काल चालीस वर्ष और राज्यकाल ग्यारह हजार पांच सौ साठ वर्ष प्रमाण हैं।

सोलस छप्पण्ण कमे, वासा कोमार-मंडलीयत्तं।
किण्हस्स अट्ठ विजओ, वीसाहिय-णव-सया-रज्जं ॥1445॥

कृष्ण नारायण का कुमार-काल और मण्डलीक काल क्रमशः सोलह और छप्पन वर्ष विजयकाल आठ वर्ष तथा राज्य काल नौ सौ बीस वर्ष प्रमाण हैं।

सत्ती-कोदंड-गदा, चक्क-किवाणाणि संख-दंडाणि।
इय सत्त महारयणा, सोहंते अद्धचक्कीणं ॥1446॥

शक्ति, धनुष, गदा, चक्र, कृपाण, शङ्ख एवं दण्ड ये सात महारत्न अर्ध-चक्रवर्तियों के पास शोभायमान रहते हैं।

मुसलाइ लंगलाई, गदाइ रयणावलीओ चत्तारि।
रयणाइं राजंते, बलदेवाणं णवाणं पि ॥1447॥

मूसल, लांगल (हल) गदा और रत्नावली (हार) ये चार रत्न सभी (नौ) बलदेवों के यहाँ शोभायमान रहते हैं।

बलदेव आदि तीनों की पर्यायान्तर-प्राप्ति

अणिदाण-गदा सव्वे, बलदेवा केसवा णिदाण-गदा।
उड्ढंगामी सव्वे, बलदेवा केसवा अधोगामी ॥1444॥

सब बलदेव निदान रहित और सब नारायण निदान सहित होते हैं। इसी प्रकार सब बलदेव ऊर्ध्वगामी (स्वर्ग और मोक्षगामी) तथा सब नारायण अधोगासी (नरक जाने वाले) होते हैं।

णिस्सेयसमट्ठ गया, हलिणो चरिमो दु बम्हकप्प-गदो।
तत्तो कालेण मदो, सिज्झदि किण्हस्स तित्थम्मि ॥1449॥

आठ बलदेव मोक्ष और अन्तिम बलदेव ब्रह्मस्वर्ग को प्राप्त हुए हैं। अन्तिम बलदेव स्वर्ग से च्युत होकर कृष्ण के तीर्थ में (कृष्ण इसी भरत क्षेत्र में आगमी चौबीसी के सोलहवें तीर्थंकर होंगे) सिद्धपद को प्राप्त होगा।

पढ़ंग-हरी सत्तमए, पंच च्छट्ठम्मि पंचमी एक्को।
एक्को तुरिमे चरिमो, तदिए णिरए तहेव पडिसत्तू ॥1450॥

प्रथम नारायण सातवें नरक में, पाँच नारायण छठे नरक में, एक पांचवें नरक में, एक (लक्ष्मण) चौथे नरक में और अन्तिम नारायण (कृष्ण) तीसरे नरक में गया है। इसी प्रकार प्रति शत्रुओं की भी गति जाननी चाहिये।

रुद्रो के नाम एवं उनके तीर्थ निर्देश

भीमावलि-जिदसत्तू, रुद्रो वइसाणलो य सुपइट्ठोः।
अचलो य पुंडरीओ, अजितंधर-अजियणाभी य ॥1451॥
पीढ़ो सच्चइपुत्रों, अंगधरा तित्थकत्ति-समएसु।
रिसहम्मि पढ़ंम-रुद्दो, जिदसत्तू होदि अजियसामिम्मि ॥1452॥
सुविहि-पमुहेसु रुद्दा, सत्तसु सत्त-क्कमेण संजादा।
संति-जिणिंदे दसमो, सच्चइपुत्तो य वीर-तित्थम्मि ॥1453॥

भीमावलि, जितशत्रु, रुद्र, वैश्वानर (विश्वानल), सुप्रतिष्ठ, अचल, पुण्डरीक, अजितन्धर, अजितनाभि, पीठ और सात्यकिपुत्र ये ग्यारह रुद्र अंगधर होते हुए, तीर्थकर्ताओं के काल में हुए हैं। इनमें से प्रथम रुद्र ऋषभदेव के काल में और जितशत्रु अजितनाथ स्वामी के काल में हुआ है। इसके आगे सात रुद्र क्रमशः सुविधिनाथ को आदि लेकर सात तीर्थंकरों के समय में हुए हैं। दसवाँ रुद्र शान्तिनाथ तीर्थंकर के समय में और सात्यकि पुत्र वीर जिनेन्द्र के तीर्थ में हुआ है।

रुद्रों के नरक जाने का कारण

सव्वे दसमे पुव्वे, रुद्दा भट्ठा तवाउ विसयत्थं।
सम्मत्त-रयण-रहिदा, बुड्ढा घोरेसु णिरएसुं ॥1454॥

सब रुद्र दसवें पूर्व का अध्ययन करते समय विषयों के निमित्त तप से भ्रष्ट होकर सम्यक्त्व रूपी रत्न से रहित होते हुए घोर नरकों में डूब गये।

रुद्रों का तीर्थ निर्देश

दो रुद्र सुण्ण छक्का, सग रुद्दा तह ये दोण्णि सुण्णाइं।
रुद्दो पण्णरसाइं, सुण्ण रुद्दं च चरिमम्मि ॥1455॥

क्रमशः दो रुद्र, छह शून्य, सात रुद्र, दो शून्य, रुद्र, पन्द्रह शून्य और अन्तिम कोठे में एक रुद्र है।

रुद्रों के शरीर का उत्सेध

पंच-सया पण्णाहिय-चइस्सया इगि-सयं च णउदी य।
सीदी सत्तरि सट्ठी, पण्णासा अट्ठवीसं पि ॥1456॥
चइवीस-च्चिय दंडा, भीमावलि-पहुदि-रुद्र-दसकस्स।
उच्छेहो णिद्दिट्ठो, सग हत्था सच्चइसुअस्स ॥1457॥

भीमावलि आदि दस रुद्रों के शरीर की ऊँचाई क्रमशः पाँच सौ, चार सौ पचास, एक सौ, नब्बै, अस्सी, सत्तर, साठ, पचास, अट्ठाईस और चौबीस धनुष तथा सात्यकि सुत की ऊँचाई सात हाथ प्रमाण कही गई है।

रुद्रों की आयु का प्रमाण

तेसीदी इगिहत्तरि, दोण्णिं एक्कं च पुव्व-लक्खाणिं।
चुलसीसी सट्ठि पण्णा, चालिस वस्साणि लक्खाणिं ॥1458॥
वीस दस चेव लक्खा, वासा एक्कूण-सत्तरी कमसो।
एक्कारस-रुद्दाणं, पमाणामाउस्स णिद्दिट्ठं ॥1459॥

तेरासी लाख पूर्व, इकहत्तर लाख पूर्व, दो लाख पूर्व, एक लाख पूर्व चौरासी लाख वर्ष, साठ लाख वर्ष, पचास लाख वर्ष, चालीस लाख वर्ष, बीस लाख वर्ष, दस लाख वर्ष और एक कम सत्तर वर्ष, यह क्रमशः ग्यारह रुद्रों की आयु का प्रमाण निर्दिष्ट किया गया है।

रुद्रों के कुमार-काल, संयम काल और संयम भङ्ग काल का निर्देश

सत्तावीसा लक्खा, छावट्ठि-सहस्सयाणि छच्च सया।
छावट्ठी पुव्वाणि, कुमार-कालो पहिल्लस्स ॥1460॥

प्रथम (भीमावलि) रुद्र का कुमार काल सत्ताईस लाख छयासठ हजार छह सौ छयासठ पूर्व-प्रमाण है।

सत्तावीसं लक्खा, छावट्ठी-सहस्सयाणि छच्च सया।
अड़सट्ठी पुव्वाणि, भीमावलि-संजमे कालो ॥1461॥

भीमावलि रुद्र का यमकाल सत्ताईस लाख छयासठ हजार छह सौ अड़सठ पूर्व प्रमाण है।

सत्तावीसं लक्ख छावट्ठि-सहस्स-छस्स-अब्भहिया ।
छावट्ठी पुव्वाणि भीमावलि-भंग-तव-कालो ॥1462॥

भीमावलि रुद्र का भंग तप काल सत्ताईस लाख छयासठ हजार छह सौ छयासठ पूर्व-प्रमाण है ।

तेवीस पुव्व-लक्खा, छावट्ठि-सहस्र-छसय-छावट्ठी ।
जिदसत्तू-कोमारो, तेत्तिय-मेत्तो य भंग-तव-कालो ॥1463॥

जितशत्रु रुद्र का तेईस लाख छयासठ हजार छह सौ छयासठ पूर्व-प्रमाण कुमार काल और इतना ही भंग-तप काल है ।

तेवीस पुव्व-लक्खा, छावट्ठि-सहस्स-छसय-अड़सट्ठी ।
संजय-काल-पमाणं, एदं जिदसत्तू-रुद्दस्स ॥1464॥

जितशत्रु रुद्र के संयम काल का प्रमाण तेईस लाख छयासठ हजार छह सौ अड़सठ पूर्व है ।

छावट्ठी-सहस्सा, छवट्ठब्भहिय-छस्सयाइं पि ।
पुव्वाणं कोमारो-विणट्ठ-कालो य रुद्दस्स ॥1465॥

तृतीय रुद्र नामक रुद्र का कुमार काल और विनष्ट-संयम काल छयासठ हजार छह सौ छयासठ पूर्व प्रमाण है ।

छावट्ठि-सहस्साइं, पुव्वाणं छस्सयाणि अड़सट्ठी ।
संजम-काल-पमाणं, तइज्ज-रुद्दस्स णिद्दिट्ठं ॥1466॥

तृतीय रुद्र के संयम काल का प्रमाण छयासठ हजार छह सौ अड़सठ पूर्व कहा गया है ।

तेत्तीस-सहस्साणि, पुव्वाणि तिय-सयाणि तेत्तीसं ।
वइसाणरस्स कहिदो, कोमारो भंग-तव-कालो ॥1467॥

वैश्वानर (विश्वानल) का कुमार काल और भंग-तप-काल तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस पूर्व-प्रमाण कहा गया है ।

तेत्तीस-सहस्साणि, पुव्वाणि तिय-सयाणि चउतीसं ।
संयम-समय-पमाणं, वइसाणल-णामधेयस्स ॥1468॥

वैश्वानर (विश्वानल) नामक रुद्र के संयम-समय का प्रमाण तैंतीस हजार तीन सौ चौंतीस पूर्व कहा गया है ।

अट्ठावीसं लक्खा, वासाणं सुपइट्ठ-कोमारो ।
तेत्तिय-मेत्तो संजय कालो-तव-भट्ठ-समयस्स ॥1469॥

सुप्रतिष्ठ का कुमार काल अट्ठाईस लाख वर्ष है, समय काल भी इतना (28 लाख वर्ष) ही है और तप-भ्रष्ट काल भी इतना (28 लाख वर्ष) ही कहा गया है ।

वासाओ वीस-लक्खा, कुमार-कालो य अचल-णामस्स ।
तेत्तिय-मेत्तो संजय-कालो तव-भट्ठ-कालो य ॥1470॥

अचल नामक रुद्र का कुमार काल बीस लाख वर्ष, इतना (20 लाख वर्ष) ही संयम काल और तप-भ्रष्ट-काल भी इतना ही है।

वासा सोलस-लक्खा, छावट्ठि-सहस्य-छ-सय-छावट्ठी।
कोमार-भंग-कालो, पत्तेयं पुंडरीयस्स ॥1471॥

पुण्ड़रीक रुद्र का कुमार काल और भङ्ग-संयम काल प्रत्येक सोलह लाख छयासठ हजार छह सौ छयासठ वर्ष-प्रमाण हैं।

वासा सोलस-लक्खा, छावट्ठि-सहस्स-छ-सय-अड़सट्ठी।
जिणदिक्ख-गमण-काल-प्पमाणयं पुंडरीयस्स ॥1472॥

पुण्ड़रीक रुद्र के जिन दीक्षा गमन अर्थात् संयम काल का प्रमाण सोलह लाख छयासठ हजार छह सौ अड़सठ वर्ष कहा गया है।

तेरस-लक्खा वासा, तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा।
अजियंधर-कोमारो, जिणदिक्खा-भंग-कालो य ॥1473॥

अजितन्धर रुद्र का कुमार और जिनदीक्षा-भङ्गकाल प्रत्येक तेरह लाख तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस वर्ष-प्रमाण कहा गया है।

वासा तेरस-लक्खा, तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-चोत्तीसा।
अजियंधरस्य एसो, जिणिदं-दिक्खग्गहण-कालो ॥1474॥

तेरह लाख तैंतीस हजार तीन सौ चौंतीस वर्ष, यह अजितन्धर रुद्र का जिन-दीक्षा ग्रहण काल हैं।

वासाणां लक्खा छह, छासट्ठि-सहस्स-छ-सय-छावट्ठी।
कोमार-भंग-कालो, पत्तेयं अजिय-णाभिस्स ॥1475॥

अजितनाभि का कुमार काल और भङ्ग-संयमकाल प्रत्येक छह लाख छयासठ हजार छह सौ छयासठ वर्ष प्रमाण हैं।

छल्लक्खा वासणं, छावट्ठि-सहस्स-छ-सय-अड़सट्ठी।
जिणरुव-धरिय-कालो, परिमाणो अजियणाभिस्स ॥1476॥

अजितनाभि का जिनदीक्षा धारण काल छह लाख छयासठ हजार छह सौ अड़सठ वर्ष प्रमाण हैं।

वीरुसाणि तिण्णि लक्खा, तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-तेत्तीसा।
कोमार-भट्ठ-समया, कमसो पीढ़ाल-रुद्दस्स ॥1477॥

पीठाल (पीठ) रुद्र का कुमार काल और तप-भ्रष्ट काल क्रमशः तीन लाख तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस वर्ष प्रमाण हैं।

तिय-लक्खाणि वासा, तेत्तीस-सहस्स-ति-सय-चोत्तीसा।
संजम-काल-पमाणं, णिद्दिट्ठं दसम-रुद्दस्स ॥1478॥

दसवें (पीठ) रुद्र के संयम-काल का प्रमाण तीन लाख तैंतीस हजार तीन सौ चौंतीस वर्ष निर्दिष्ट किया गया है।

सग-वासं कोमारो, संजम-कालो हवेदि चोत्तीसं ।
अड़वीस भंग-कालो, एयारसमस्स रुद्दस्स ॥1479॥

ग्यारहवें (सात्यकिपुत्र) रुद्र का कुमार-काल सात वर्ष, संयम काल चौंतीस वर्ष और संयम-भङ्ग-काल अट्ठाईस वर्ष प्रमाण हैं।

रुद्रों की पर्यायान्तर प्राप्ति

दो रुद्दा सत्तमए, पंच य छट्ठम्मि पंचमे एक्को ।
दोण्णि चउत्थे पडिदा, एक्करसो तदिय-णिरयम्मि ॥1480॥

इन ग्यारह रुद्रों में से दो रुद्र सातवें नरक में, पाँच छठे में एक पाँचवे में, दो चौथे में और अन्तिम (ग्यारहवाँ) रुद्र तीसरे नरक में गया है।

नारदों का निर्देश

भीम-महभीम-रुद्दा, महरूद्दो दोण्णि काल-महकाला ।
दुम्मुह-णिरयमुहाधोमुह, णामा णव य णारद्दा ॥1481॥

भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरक मुख और अधोमुख ये नौ नारद हुए हैं।

रुद्दा इव अइरुद्दा, पाव-णिहाणा हवंति सव्वे दे ।
कलइ-महाजुज्झ-पिया, अधोगया वासुदेव त्व ॥1482॥

रुद्रों के सदृश अतिरौद्र ये सब नारद पाप के निधान होते हैं कलह-प्रिय एवं युद्ध-प्रिय होने से वासुदेवों के समान ही ये भी नरक को प्राप्त हुए हैं।

उस्सेह-आउ-तित्थयरदेव-पच्चक्ख-भाव-पहुदीसुं ।
एदाण णारदाणं, उवएसो अम्ह उच्छिण्णो ॥1483॥

इन नारदों की ऊँचाई, आयु और तीर्थंकर देवों के (प्रति) प्रयत्क्ष-भावादिक के विषय में हमारे लिए उपदेश नष्ट हो चुका है।

कामदेवों का निर्देश

कालेसु जिणवराणं, चउवीसाणं हवंति चउवीसा ।
ते बाहुबलि-प्पमुहा, कंदप्पा णिरुवमायारा ॥1484॥

चौबीस तीर्थंकरों के काल में अनुपम आकृति के धारक वे बाहुबलि-प्रमुख चौबीस कामदेव होते हैं।

160 महापुरुषों का मोक्ष पद निर्देश

तित्थयरा तग्गुरओ, चक्की-बल-केसि-रुद्द-णारद्दा ।
अगंज-कुलयर-पुरिसा, भव्वा सिज्झंति णियमेण ॥1485॥

तीर्थंकर (24), उनके गुरूजन (माता-पिता 24 + 24), चक्रवर्ती (12), बलदेव (9), नारायण (9), रुद्र (11), नारद (9), कामदेव (24), और कुलकर (14) ये सब (160) भव्य पुरुष नियम से सिद्ध होते हैं।

एलाचार्य सिद्धान्त चक्रवर्ती अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी

श्री कनकनन्दी जी महाराज द्वारा लिखित ग्रन्थ

प्रकाशित ग्रन्थ :

1. धर्म ज्ञान व विज्ञान
2. ज्वलन्त शंकाओं का शीतल समाधान
3. अनेकान्त एवं स्याद्वाद
4. अनुपराग पथ
5. जैन धर्म में नारी का स्थान
6. सर्वोदय

नवीन प्रकाशित ग्रन्थ :

1. धर्म विज्ञान बिन्दु (पुष्प I) —श्री राजीव कुमार जैन (बड़ौत)
2. भाग्य एवं पुरुषार्थ —श्री राजेश कुमार जैन (बड़ौत)
3. पुण्य-पाप मीमांसा —श्री अनिल कुमार जैन (बड़ौत)
4. निमित्त-उपादान मीमांसा —श्री नरेन्द्र कुमार जैन (बड़ौत)
5. दिगम्बर साधु नग्न क्यों ?
6. धर्म दर्शन एवं विज्ञान (पुष्प I) —मिश्रिलालजी वाकीलवाल
7. संस्कार —जुगमन्दरजी दास (कोयले वाले) मु० न०
8. दिगम्बर जैन साधु के नग्नत्व एवं केशलोंच —भगवानदास (जौला वाले) हिन्दी व अंग्रेजी भाषा में

प्रकाशाधीन ग्रन्थ :

1. अतिमानवीय शक्ति (Extra human power)
2. जिनार्चना (पुष्प I) —सौ० प्रेमलता जैन
3. अनेकान्त दर्शन —श्री मंगलसैन जैन (मुजफ्फरनगर) (Philosophy of Relativity)
4. व्यसन का धार्मिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण —श्री मंगलसैन जैन (मुजफ्फरनगर)
5. क्रांतिकारी महापुरुष

अप्रकाशित ग्रन्थ :

1. धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान
2. विश्व शांति की पंचशील नीति
   (Five Principles for Universal peace)
3. प्राचीन व अर्वाचीन स्वास्थ्य विज्ञान
   (Medical Science Old and New)
4. प्राचीन, अर्वाचीन जैन धर्म की समीक्षा
5. यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र का एक वैज्ञानिक अध्ययन
   (Study of yantra, Mantra, Tantra)
6. भौतिक विज्ञान एवं रसायनिक विज्ञान
   (Comparative Study of Basic Sciences)
7. प्राचीन व अर्वाचीन राजनीति
   (Political Science Old and New)
8. शकुन एवं अरिष्ट विज्ञान
   (Science of omens)
9. प्राचीन अर्वाचीन सभ्यता व संस्कृति
   (Ancient and Modern Civilization and Culture)
10. प्राचीन व अर्वाचीन मनोविज्ञान
11. जीव-विज्ञान
12. संस्कृति के उन्नायक महापुरुष
13. ध्यान–एक अनुचिन्तन (पुष्प I)
14. विश्व धर्म के दस लक्षण
15. 'तत्वनुचिन्तन' (अनुप्रेक्ष्या या अनाशक्ति योग)
16. प्राचीन सभ्यता, संस्कृति की विभिन्न कला
17. प्राचीन एवं अर्वाचीन अंक विज्ञान
18. धर्म विज्ञान बिन्दु (पुष्प 2)
19. धर्म दर्शन एवं विज्ञान (पुष्प 2)
20. ध्यान–एक अनुचिन्तन (पुष्प 2)
21. स्वप्न विज्ञान
    (Science of Dreams)

मुद्रक : प्रैसीडेण्ट प्रेस, मेरठ कैन्ट ।